(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का अध्यात्मिक मासिक-पत्र)

षिंक मू० २) एक अंक ≡)

सन्देश नहीं मैं स्वर्ग लोक का लाई।
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आई॥

सम्पादक—पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, सहा० सम्पा०—प्रो० रामचरण महेन्द्र एम० ए०

वर्ष ७ | मथुरा, १ सितम्बर सन् १९४६ ई० | अंक ९

जीने योग्य जीवन, जिओ।

धिक्कार है उस जिंदगी पर जो मक्खियों की तरह पापों की विष्ठा के ऊपर भिनभिनाने में और कुत्ते की तरह विषय भोगों की जूठन चाटने में व्यतीत होती है। उस बड़प्पन पर धिक्कार है, जो खुद खजूर की तरह बढते हैं पर उनकी छाया में एक प्राणी भी आश्रय नहीं पा सकता। सर्प की तरह धन के खजाने पर बैठ कर चौकीदारी करने वाले लालची किस प्रकार सराहनीय कहे जा सकते हैं? जिनका जीवन तुच्छ स्वार्थों को पूरा करने की उधेड बुन में निकल गया—हाय, वे कितने अभागे हैं। सुर दुर्लभ देह रूपी बहुमूल्य रत्न, इन दुर्बुद्धियों ने कांच और कङ्कड़ के टुकडों के बदले बेच दिया, किस मुख वे यह कहेंगे कि हमने जीवन का सद् व्यय किया। इन कुबुद्धियों को तो अन्त में पश्चात्ताप ही प्राप्त होगा। एक दिन उन्हें अपनी भूल प्रतीत होगी, पर उस समय अवसर हाथ से चला गया होगा और शिर धुन धुन कर पछताने के अतिरिक्त और कुछ हाथ न रहेगा।

मनुष्यो! जिओ और जीने योग्य जीवन जिओ, ऐसी जिन्दगी बनाओ जिसे आदर्श और अनुकरणीय कह जा सके। विश्व में अपने ऐसे पद चिन्ह छोड़ जाओ जिन्हें देख कर आगामी संतति अपना मार्ग ढूंढ सके। आपका जीवन सत्य से, प्रेम से, न्याय से, भरा हुआ होना चाहिये। दया, सहानुभूति, आत्म निष्ठा, संयम, दृढता, उदारता, आपके जीवन के अङ्ग होने चाहिये। हमारा जीवन मनुष्यता के महान गौरव के अनुरूप ही होना चाहिये।

"अखण्ड-ज्योति" द्वारा प्रकाशित अमूल्य पुस्तकें।

यह बाजारू किताबें नहीं हैं। इनकी एक एक पंक्ति के पीछे लेखकों का गहरा अनुभव एवं अनुसंधान है। इतने गहन विषयों पर इतना सुलभ साहित्य अन्यत्र प्राप्त होना कठिन है। यह पुस्तकें पाठक की जीवन दिशा में उथल पुथल उत्पन्न कर देने की दैवी शक्ति से पूर्णतया सम्पन्न हैं। इनमें से जो पुस्तकें आपने अभी तक नहीं पढीं, उन्हें आज ही मँगा लीजिए।

१—मैं क्या हूँ ? ।=)
२—सूर्य चिकित्सा विज्ञान ।=)
३—प्राण चिकित्सा विज्ञान ।=)
४—परकाया प्रवेश ।=)
५—स्वस्थ और सुन्दर बनने की अद्भुत विद्या ।=)
६—मानवीय विद्युत के चमत्कार ।=)
७—स्वरयोग से दिव्य ज्ञान ।=)
८—भोग में योग ।=)
९—बुद्धि बढाने के उपाय ।=)
१०—धनवान बनने के गुप्त रहस्य ।=)
११—पुत्र या पुत्री उत्पन्न करने की विधि ।=)
१२—वशीकरण की सच्ची सिद्धि ।=)
१३—मरने के बाद हमारा क्या होता है ।=)
१४—जीव जन्तुओं की बोली समझना ।=)
१५—ईश्वर कौन है ? कहां है ? कैसा है ? ।=)
१६—क्या धर्म ? क्या अधर्म ? ।=)
१७—गहना कर्मणोगति ।=)
१८—जीवन की गूढ गुत्थियों पर तात्विकप्रकाश ।=)
१९—पंचाध्यायी धर्म नीति शिक्षा ।=)
२०—शक्ति संचय के पथ पर ।=)
२१—आत्म गौरव की साधना ।=)
२२—प्रतिष्ठा का उच्च सोपान ।=)
२३—मित्र भाव बढाने की कला ।=)
२४—आन्तरिक उल्लास का विकाश ।=)
२५—आगे बढ़ने की तैयारी ।=)
२६—अध्यात्म धर्म का अवलम्बन ।=)
२७—ब्रह्म विद्या का रहस्योद्घाटन ।=)
२८—ज्ञान योग, कर्म योग, भक्ति योग ।=)
२९—यम और नियम ।=)
३०—आसन और प्राणायाम ।=)
३१—प्रत्याहार, धारणा ध्यान और समाधि ।=)
३२—तुलसी के अमृतोपम गुण ।=)
३३—आकृति देखकर मनुष्य की पहिचान ।=
३४—मैस्मरेजम की अनुभव पूर्ण शिक्षा ।=)
३५—ईश्वर और स्वर्ग प्राप्ति का सच्चा मार्ग ।=)
३६—हस्तरेखा विज्ञान ।=)
३७—विवेक सतसई ।=)
३८—संजीवनी विद्या ।=)
३९—गायत्री की चमत्कारी साधना ।=)
४०—महान जागरण ।=)
४१—तुम महान हो ।=)
४२—गृहस्थ योग ।=)
४३—अमृत पारस और कल्पवृक्ष की प्राप्ति ।=)
४४—घरेलू चिकित्सा ।=)
४५—बिना औषधि के कायाकल्प ।=)
४६—पँच तत्वों द्वारा सम्पूर्ण रोगोंका निवारण ।=)
४७—हमें स्वप्न क्यों दीखते हैं ? ।=)
४८—विचार करने की कला ।=)
४९—दीर्घ जीवन के रहस्य ।=)
५०—हम वक्ता कैसे बन सकते हैं ।=)
५१—लेखन कला ।=)
५२—प्रार्थना के प्रत्यक्ष चमत्कार ।=)
५३—विचार संचालन विद्या ।=)
५४—नेत्र रोगों की प्राकृतिक चिकित्सा ।=)
५५—अध्यात्म शास्त्र ।=)
५६—स्वप्न दोष की मनोवैज्ञानिक चिकित्सा ।=)

पांच रुपये से अधिक की पुस्तकें लेने पर डाक खर्च माफ। पांच रु० से कम की पुस्तकों का डाक खर्च ग्राहक के जिम्मे।

मथुरा १ सितम्बर सन् १९४६ ई०

व्यभिचार से दूर रहो।

स्त्री पुरुषों की जननेन्द्रियां शरीर के अन्य समस्त अंगों की अपेक्षा अधिक चैतन्य सजीव, कोमल, सूक्ष्म, प्राण विद्युत से युक्त होते हैं। मानव शरीर के सूक्ष्म तत्वों को जानने वाले बताते हैं कि स्त्री में ऋण (निगेटिव) और पुरुष में धन (पाजटिव) विद्युत का भंडार होता है । दर्श स्पर्श से भी यह विद्युत स्त्री पुरुषों में एक विचित्र कम्पन उत्पन्न करती रहती है । परन्तु शरीर के सर्जीवतम प्राण केन्द्र गुह्य स्थानों का जब दोनों एकीकरण करते हैं तब तो एक शरीर व्यापी तूफान उत्पन्न हो जाता है। दोनों के शरीर के विद्युत परिमाणु दोनों के अन्दर अत्यन्त वेग और आवेश के साथ प्रवेश करते हैं और दोनों में एक शक्ति शाली अंतरंग संबंध-प्रेम उत्पन्न करते हैं। एक दूसरे के सूक्ष्म तत्वों का एक दूसरे में बडी तीव्र गति से प्रचुर परिमाण में आदन प्रदान होता है। यही कारण है कि जिन स्त्री पुरुषों में यौन संबंध स्थापित होजाता है वे एक दूसरे के ऊपर आसक्त होजाते हैं, उनके बीच एक ऐसा आकर्षण और सामंजस्य स्थापित हो जाता है जिसे हटाना या तोड़ना असाधारणी रूप से कठिन होता है। पांव दावना, सिर मसलना जैसी शारीरिक सेवाओं में ऐसी कोई हलचल नहीं होती किन्तु यौन सम्बन्ध से दो व्यक्तियों के सूक्ष्म प्राण तत्वों में आवेश पूर्ण आदान प्रदान होता है। इसलिए शरीर सेवा और यौन सम्बन्ध को समान नहीं कहा जा सकता।

पतिव्रत और पत्नीव्रत का समर्थन शास्त्र ने इसी वैज्ञानिक आधार पर किया है। एक पुरुष का एक स्त्री से संपर्क होने पर उन दोनों में प्रेम भाव बढ़ना है, एक की शक्ति निश्चित मार्ग से दूसरे को प्राप्त होती है। गुण कर्म स्वभाव की दृष्टि से एक दूसरे के निकट आते हैं और एक प्राण दो शरीर बन जाते हैं। यौन सम्बन्ध के द्वारा दोनों के रक्त में सजीव संमिश्रण होता है, किसी बीमारी में किसी रोगी को रक्त का इंजेक्शन देना होता है तो डाक्टर लोग पति पत्नी के जोड़े में से ही रक्त लेने को महत्व देते हैं। क्योंकि दम्पत्ति के रक्त में साहवास के कारण एक समान तत्व उत्पन्न होजाते हैं।

पति पत्नी के बीच सच्चा प्रेम, वफादारी, सेवा, आत्मीयता, विश्वास तभी रह सकता है जब उनमें 'एकनिष्ठा' का व्रत हो। यदि कोई स्त्री अनेक पुरुषों से या कोई पुरुष अनेक स्त्रियों से गुप्त सम्बन्ध स्थापित करता है तो उसके शरीर में, रक्त में, मन में, मस्तिष्क में, अनेकों तत्व मिल जाने के कारण अस्थिरता, खींचतान, आकर्षण विकर्षण के दौर चलने लगते हैं। ऐसी अवस्था में सच्चा प्रेम, वफादारी एवं आत्मीयता असंभव है। व्यभिचारी स्त्री पुरुषों का दाम्पत्ति जीवन कपट, धूर्तता, मायाचार और छल से भरा हुआ होता है। वे अवसर पड़ने पर अपने साथी को धोखा देसकते हैं।

व्यभिचार, चोरी, भय, लज्जा और पाप की झिझक के साथ किया जाता है, उसे छिपाने का प्रयत्न किया जाता है। उपयुक्त अवसर ढूँढ़ने के प्रपंच उनके मन में उठा करते हैं। यह पापवृत्तियाँ कुछ समय लगातार अभ्यास में आते रहने पर मनुष्य के मनमें वे गहरी उतर जाती हैं और जड़ जमा लेती हैं। फिर उसके स्वभाव में वे बातें

शामिल होजाती है और जीवन के विविधि क्षेत्रों में वे प्रकटित होती रहती है। यही कारण है कि व्यभिचारी व्यक्ति अक्सर चोर, निर्लज्ज, दुस्साहसी, कायर, झूठे और ठग होते हैं। वे अपने व्यापार तथा व्यवहार में समय समय पर अपनी इस कुप्रवृत्तियों का परिचय देते रहते हैं। उनका विश्वास उठ जाता है, लोगों के मनमें उनके लिए प्रतिष्ठा तथा आदर की भावना नहीं रहती, सच्चा सहयोग भी नहीं मिलता, फलस्वरूप जीवन विकाश के महत्व पूर्ण मार्ग बन्द होजाते हैं। पाप वृत्तियों के मनमें जम जाने से अन्तःकरण कलुषित होता है। प्रतिष्ठा एवं विश्वस्तता नष्ट होती है और हर क्षेत्र में सच्ची मैत्री या सहयोग भावना का अभाव मिलता है। यह तीनों ही बातें नरक को दारुण यातना के समान हैं, व्यभिचारी को अपने कुकर्म का दुष्परिणाम इसी जीवन में उपर्युक्त तीन प्रकार से नित्य ही भुगतना पड़ता है।

स्त्री पुरुषों के सम्मिलन से एक का प्रभाव दूसरे पर जाता है। एक के दुर्गुण दूसरे में प्रवेश हुए बिना नहीं रहते। काम भोग करने के साथ दूसरा पक्ष अपनी कुवासनाओं की छाप भी छोड़ता है यह परत दिन पर दिन मजबूत होते जाते हैं और वह दिन दिन अधिक दुर्गुणी बनता जाता है। व्यभिचार स्त्री और पुरुष दोनों के लिए घातक है, पर स्त्रियों के लिए विशेष रूप से घातक है। कारण यह है कि स्त्रियाँ अपने शरीर के सबसे सूक्ष्म, चेतन, एवं प्राण युक्त स्थान-गुह्येन्द्रिय में पुरुष का वीर्य ग्रहण करती हैं। वीर्य पानी की बूँद नहीं है वरन् पुरुष के शरीर और मन का सार भूत प्राण सत्व है। उसकी एक एक बूँद में मनुष्य उत्पन्न करने की प्रचंड शक्ति भरी हुई है। उस प्रचंड, शक्ति शाली प्राण सत्व के साथ पुरुष की गुह्य और प्रकट शक्तियां केन्द्री भूत होती है। इस द्रव प्राण सत्व को योनि मार्ग में धारण करना ऐसा ही है मानों किसी के गुण अवगुणों के सार भाग का इंजेक्शन लेना। यह निश्चित है कि पापी और पतित स्वभाव के व्यक्ति ही व्यभिचारी होते हैं उनका पाप एवं पतन, प्राण सत्व वीर्य के साथ स्त्री के आत्मिक क्षेत्र में व्याप्त हो जाता है और उसमें भी यह दुर्गुण भर देता है।

कितने ही व्यभिचारी पुरुषों के संयोग से उनके अनेकों प्रकार के दोषों को अपने सूक्ष्म शरीर में संचित कर लेने से स्त्री की निर्बल अन्तः चेतना बहुत ही विकृत होजाती है। एक स्थान में अनेकों तलवार ठूँसने से भयंकर स्थिति उत्पन्न होती है। वैसे ही एक स्त्री के शरीर में नाना प्रकार के गुण, कर्म, स्वभाव एवं प्रभाव प्रवेश कर जाते हैं तो वे आपस में टकराते हैं उसका प्रभाव मनोभूमि को विकृत कर देता है। व्यभिचारिणी स्त्रियां सीधे स्वभाव की नहीं रहतीं, उनमें चिड़चिड़ापन झुंझलाहट, घबराहट, आवेश, अस्थिरता, रूठना, असत्य, छल, अतृप्ति आदि दुर्गुणों की मात्रा बढ़ जाती है, शिर दर्द, कब्ज, दर्द, खुश्की, प्यास, अनिद्रा, थकावट, दुःस्वप्न, दुर्गन्धि आदि शारीरिक विकार भी बढ़ने लगते हैं एक शरीर में अनेकों पुरुषों के प्राण का स्थापित होना, इस प्रकार के अनेकों दुखदायी परिणाम उपस्थित करता है। वेश्यावृत्ति करने वाली स्त्रियों का सान्निध्य ऐसा अनिष्टकर होता है कि पुरुष को बड़े तीव्र झटके के साथ नारकीय यातनाओं के कुण्ड में धकेल देता है।

कई प्रकार के वीर्यों को एक स्थान पर एकत्रित होने से विषैले रसायनिक पदार्थों का निर्माण होता है। जैसे घी और शहद अमुक मात्रा में मिला देने से हानिकारक रसायन बन जाती है वैसे ही अनेक व्यक्तियों के शुक्र कीट, योनि मार्ग में एकत्रित होकर विष बन जाते हैं, यह विष सुजाक, आतिशक, जैसे योनि रोग उत्पन्न करता है। वे रोग जब बढते हैं तो उस स्त्री के सम्पर्क में आने वाले पुरुषों को लगते हैं पुरुषों की छूत अन्य स्त्रियों को लगती है, इस प्रकार व्यभिचार के कारण ये सत्यानाशी रोग उत्पन्न होते और फैलते हैं। जिसके पीछे यह रोग लग जाते हैं उसका पीछा मुश्किल से छूटता है। यह रोग सड़ा सड़ा कर, और रुला रुला कर रोगी को मारते हैं। व्यभिचारिणी स्त्रियों का गर्भाशय दूषित होजाने के

कारण या तो उनके संतान होती ही नहीं, होती भी है तो पैतृक रोगों को लेकर होती है। माता पिता की पापमयी मनोवृत्तियों का प्रभाव संतान पर निश्चित रूप से होता है। उस संतान में अनेक आसुरी दुर्गुण पाये जाते हैं। व्यभिचार से उत्पन्न हुई संतान को "वर्ण शंकर" के अपमान जनक घृणास्पद नाम से शास्त्र कारों ने पुकारा है। कारण यह है कि उस संतान में माता पिता की प्रवृत्तियां सन्निहित रहती ही हैं। ऐसे बालकों की अभिवृद्धि होना संसार के लिए अभिशाप रूप है। इसलिए व्यभिचार सर्वथा निन्दनीय है। धर्म की दृष्टि से तो स्त्री और पुरुष दोनों के लिए ही वह एक समान पाप है परन्तु शारीरिक दृष्टि से स्त्रियों के लिए वह और भी बुरा है। क्योंकि स्त्रियों गुह्य अंग में पुरुष के वीर्य की स्थापना होती है, इससे उनके ऊपर अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक प्रभाव विशेष रूप से होते हैं। पुरुष स्त्री के वीर्य को धारण नहीं करता इसलिए किन्हीं अंशों में उसे शारीरिक हानि कुछ कम होती है।

यदि पति पत्नी में एक निष्ठा न हो, वे व्यभिचार में प्रवृत्त हों तो घर की आर्थिक दशा ठीक नहीं रह सकती। दोनों का ध्यान अपने तुच्छ स्वार्थ में केन्द्रित रहेगा। यदि पति व्यभिचारी हो तो दूसरी स्त्री को धन देकर अपने आश्रितों को अर्थ हीन बना देगा। यदि स्त्री व्यभिचारिणी हो तो कभी जार पति की आवश्यकता होने पर घर का धन गुप्त रूप से उसे देदेगी। यदि जार पति से लेगी तो उसे गुप्त रूप से रखेगी, या फैशन आदि में अपव्यय करेगी। व्यभिचार से प्राप्त हुआ धन मुफ्त का सा लगता है वह बुरी तरह फिजूल खर्ची में जाता है। वेश्याऐं इतना धन कमाती हैं पर यौवन ढलने पर दूसरों की मुहताज होकर रोटी खाती हैं। उनके पास जमा कुछ नहीं हो पाता। फिजूल खर्ची की आदत यदि स्त्री या पुरुष एक को भी हो तो घर की आर्थिक व्यवस्था ठीक नहीं रह सकती। वहां दरिद्रता और अभाव का ही सदा बोल बाला रहेगा। पति पत्नी की एक निष्ठा और आत्मीयता होने पर थोड़ी आमदनी में भी किफायत शारी और सावधानी बरतने से आर्थिक कठिनाई नहीं आती, परन्तु दोनों के बीच कपट या शिथिलता होने पर अच्छी आमदनी होते हुए भी अर्थ संकट बना रहता है।

व्यभिचारी व्यक्तियों को अपने प्रेमी को स्वेच्छा पूर्वक प्राप्त करने की सुविधा नहीं होती, जब अवसर भी मिलता है तो थोड़े समय के लिए। वह भी आशका, भय और झिझक के साथ। ऐसी स्थिति में तृप्ति दायक संयोग सुख, किसी भी प्रकार नहीं मिल सकता। दाम्पत्ति सुख की यह चिन्ह पूजा दोनों में से किसी को तृप्ति नहीं देपाती। मनोविज्ञान शास्त्र के अनुसार यह प्रकट है कि—अतृप्त संयोग मस्तिष्क सम्बन्धी विकार और मानसिक दुर्गुण उत्पन्न करता है। इच्छित तृप्ति की सुविधा न होने से व्यभिचारी व्यक्ति अपने प्रिय पात्र के लिए चिन्तित रहते हैं। विरह दुख पाते हैं, अवसर के लिए आतुर रहते हैं, जी की जलन बुझाने और प्रेमी को आकर्षित रखने के लिए उसकी समीयता प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार की चेष्टाओं में उनका सारा ध्यान उलझा रहता है। हर घड़ी वही फितूर सवार रहता है, समय का अधिकांश भाग उन्हीं बातों में खर्च हो जाता है, फल स्वरूप जीवन के अन्य आवश्यक एवं महत्वपूर्ण काम बिगड़ते हैं, अधूरे पड़े रहते हैं, छूट जाते हैं। इस मानसिक उद्वेग में शरीर दिन दिन घुलता जाता है। ऐसे लोग बीमारी और कमजोरी से ग्रसित होकर अल्पायु में ही कालकवलित होजाते हैं। असंयम के कारण अधिक वीर्यपात होता है, इस प्राण तत्व के अधिक व्यय के कारण अनेकों नव-युवक तपैदिक के शिकार होकर जीवन लीला समाप्त करते देखे गये हैं।

एक निष्ठा का बंधन शिथिल होजाने से समाज का संगठन बिलकुल नष्ट भ्रष्ट हो जायगा। स्त्री, बच्चे, माता पिता, आदि के सम्बन्ध एक क्षणिक ठेकेदारी मात्रा रह जावेंगे। स्वस्थता, सुन्दरता, स्वभाव या धन की अधिक मात्रा का जहां अवसर मिलेगा वहां पहले सम्बन्ध को छोड़कर लोग दूसरे नये सम्बन्ध की स्थापना किया करेंगे। तब किसी

भी स्त्री पुरुष को अपने साथी पर विश्वास न रहेगा। सदा यही भय लगा रहेगा कि अधिक अच्छा अवसर मिला कि साथी पल्ला छोड़ कर भागा। ऐसी आशंका के बीच किसी सुदृढ परिवार की स्थापना किस प्रकार हो सकती है ? सुदृढ परिवार की, आधार शिला स्त्री पुरुष के बीच सच्ची मित्रता, एकता और आत्मीयता ही है। और वह तभी होसकती है जब एक दूसरे के प्रति वफादार हो, उसके लिए कुछ त्याग करे। इस त्याग और वफादारी की प्राथमिक परीक्षा—एकनिष्ठा, व्यभिचार से बचना ही है। जहां एकनिष्ठा न होगी—उन पति पत्नी के बीच सच्ची आत्मीयता का होना असंभव है। अस्थिर संशंकित और प्रेम रहित परिवारों का समाज संसार के सारे सौन्दर्य का और मानव जाति की महत्ता का नाश ही कर देगा। यदि व्यभिचार पर प्रतिबंध न होगा तो एक व्यक्ति दूसरे के, और दूसरा तीसरे के घर को ताकेगा और सर्वत्र अशान्ति, अस्थिरता एवं अविश्वास का वातावरण व्याप्त होजायगा। स्त्री या पुरुष किसी को सच्चा साथी न मिल सकेगा।

इन सब बातों पर विचार करने से पतिव्रत और पत्नी व्रत की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। काम सेवन एक मनोरंजक खेल मात्र नहीं है। यह प्राण विनिमय की वैज्ञानिक प्रक्रिया है। यह वह महान रसायनिक क्रिया है जिसके द्वारा दो प्राणों का एकीकरण होता है और उस संयोग से नये प्राणों की बालकों की उत्पत्ति होती है। भावी संतति की पवित्रता, सार्वजनिक स्वास्थ्य, समाज की स्थिरता, परिवार की सिंचिन्नता आदि जीवन की महत्व पूर्ण समस्याओं का सदाचार से अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है। इसमें शिथिलता आते ही इतनी दुखदायी उलझनें उत्पन्न होजाती हैं जिनके सामने काम सेवन का इन्द्रिय सुख बिलकुल तुच्छ और उपेक्षणीय है। मनुष्य समाज का सामूहिक हित जिन कामों में निहित है वे धर्म हैं, जिनकार्यों से सामूहिक अहित होता है वे पाप हैं। चूंकि व्यभिचार से मनुष्य जाति को सामूहिक हानि है इसलिए वह त्याज्य है एवं अधर्म है। पाठकों को व्यभिचार से दूर रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

——

बहाने मत बनाओ।

(श्री० जनार्दन जी बी० ए० सुलतानगंज)

——

मनुष्य अपनी कमजोर को स्वीकार न कर बहाने बनाया करता है। अपनी कमजोरी को जानते हुए भी उसे स्वीकार करने में उसे कुछ अजीब पीड़ा का बोध होता है। नहीं तो अपनी कमजोरी को दूसरी वस्तुओं पर आरोपित करने की जरूरत? यदि खुल कर मनुष्य अपनी कमजोरी को मान ले, तो उसे आगे बढ़ने में अधिक सफलता मिल सकती है। क्योंकि ज्ञान हमें आगे बढ़ने, बुरी परिस्थितियों से छुटकारा पाने के लिये प्रेरणा देता रहता है। अपनी सच्ची अवस्था का ज्ञान क्षण भर भले ही हमें दहला दे, पर वह शक्ति भी देता है। जो इमारत झूठ की नींव पर खड़ी है, उसे गिरने का सदा भय रहता है। क्यों न हम अपनी नींव सचाई और इमानदारी पर रखें, क्योंकि ऐसी इमारत के गिर जाने पर भी हमें दुःख नहीं होगा। होगा भी तो, उसके साथ में सन्तोष का अमृत रहेगा।

एक बार झूठ बोलिये, फिर देखिये उस झूठ को कायम रखने के लिये आपको कितना अधिक झूठ बोलना पड़ता है। आपका मन उस हालत में भले आपको यह कहकर सन्तोष दिलाना चाहेगा कि देखो, "तुम कितने तेज हो, तुम्हारी चालाकी कोई नहीं समझ सकता।" पर आपकी आत्मा असन्तुष्ट रहेगी, सदा आशंकित रहेगी। झूठ के बल पर संसार का वैभव आप भले ही बटोरलें, पर आत्म-राज्य की स्वर्गीय शान्ति आप से सदा के लिये छिन जायगी। क्या उस अन्तरतम की शान्ति के आगे संसार की कोई वस्तु ठहर सकती है ?

माना, सत्य का पथ असि-धार है, पर क्या जीवन फूल सा सुकुमार है ? जीवन किसलय सा कोमल ही नहीं, कण्टक सा कठोर भी है। जीवन कोमल और कठोर, सत्य और स्वप्न, सूखा और सरस का सम्मिश्रण है। तभी तो जीवन, जीवन है।

————

श्राद्ध का रहस्य।

(१)

श्रद्धा से श्राद्ध शब्द बना है। श्रद्धा पूर्वक किये हुए कार्य को श्राद्ध कहते हैं। सत्कार्यों के लिए, सत्पुरुषों के लिए, सद्भावों के लिए आन्दर की, कृतज्ञता की भावना रखना श्रद्धा कहलाता है। उपकारी, तत्वों के प्रति आदर प्रकट करना, जिन्होंने अपने को किसी प्रकार लाभ पहुंचाया है उनके लिए कृतज्ञ होना श्रद्धालु का आवश्यक कर्तव्य है। ऐसी श्रद्धा हिन्दू धर्म का मेरु दंड है। इस श्रद्धा को हटा दिया जाय तो हिन्दू धर्म की सारी महत्ता नष्ट हो जायगी और वह एक निःस्वत्व छूंछ मात्र रह जायगा। श्रद्धा हिन्दू धर्म का एक अंग है इस लिए श्राद्ध उसका धार्मिक कृत्य है।

माता पिता और गुरु के प्रयत्न से बालक का विकाश होता है। इन तीनों का उपकार मनुष्य के ऊपर बहुत अधिक होता है। उस उपकार के बदले में बालक को इन तीनों के प्रति अटूट श्रद्धा मनमें धारण किये रहने का शास्त्र कारों ने आदेश किया है। "मातृ देवो भव, पितृ देवो भव, आचार्य देवो भव" इन श्रुतियों में इन्हें देव-नरतन धारी देव मानने और श्रद्धा रखने का विधान किया है। स्मृति कारों ने माता को ब्रह्मा, पिता को विष्णु और आचार्य को शिव का स्थान दिया है। यह कृतज्ञता की भावना सदैव बनी रहे, इसलिए गुरु जनों का चरण स्पर्श, अभिवन्दन करना नित्य के धर्म कृत्यों में सम्मिलित किया गया है। यह कृतज्ञता की भावना जीवन भर धारण किये रहना आवश्यक है। यदि इन गुरुजनों का स्वर्गवास हो जाय तो भी मनुष्य की वह श्रद्धा कायम रखनी चाहिए। इस दृष्टि से मृत्यु के पश्चात् पितृ पक्षों में मृत्यु की वर्ष तिथि के दिन, पर्व समारोहों पर श्राद्ध करने का श्रुति स्मृतियों में विधान पाया जाता है। नित्य की संध्या के साथ तर्पण जुड़ा हुआ है। जल की एक अञ्जली भर कर हम स्वर्गीय पितृ देवों के चरणों में उसे अर्पित कर देते हैं। उनके नित्य चरण स्पर्श अभिवन्दन की क्रिया दूसरे रूप में इस प्रकार पूरी होती है। जीवित और मृत पितरों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का यह धर्मकृत्य किसी न किसी रूप में मनुष्य पूरा करता है और एक आत्म संतोष का अनुभव करता है।

किन्ही विशेष अवसरों पर श्राद्ध पर्वों में-हम अपने पूर्वजों के लिए ब्राह्मणों को अन्न, वस्त्र, पात्र आदि का दान करते हैं। और यह आशा करते हैं कि यह वस्तुऐं हमारे पितृ देवों को प्राप्त होंगी। इस संबंध में आज एक तर्क उपस्थित किया जाता है कि दान की हुई वस्तुऐं पितरों को न पहुंचेंगी। स्थूल दृष्टि से भौतिक वादी दृष्टि कोण से—यह विचार ठीक भी है। जो पदार्थ श्राद्ध में दान दिये जाते हैं ने सब उसी के पास रहते हैं जिसे दिया जाते हैं। खिलाया हुआ भोजन निमंत्रित व्यक्ति के पेट में जाता है तथा धन वस्त्र आदि उसके घर जाते हैं। यह बात इतनी स्पष्ट है जिसके लिए कोई तर्क उपस्थित करने की आवश्यकता नहीं। जो व्यक्ति श्राद्ध करता है वह भी इस बात को भली प्रकार जानता है कि जो वस्तुऐं दान दी गई थी वे कहीं उड़ नहीं गईं वरन् जिसने दान लिया था उसी के प्रयोग में आईं हैं। इस प्रत्यक्ष बात में किसी तर्क की गुंजायश नहीं है।

अब प्रश्न दान के फल के संबंध में रह जाता है। यदि यह भी कहा जाय कि दान का पुण्य फल दाता को ही मिलता है तो इसमें श्राद्ध की अनुपयोगिता सिद्ध नहीं होती। मनुष्य को लोभ वश दान आदि सत्कर्मों में प्रायः अरुचि रहती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए आचार्यों ने कुछ पर्व, उत्सव, स्थान, काल, ऐसे नियत किये हैं जिन पर दान करने के लिए विशेष रूप से प्रेरित किया गया है। उन विशिष्ट पर्वों, अवसरों, पर दान करने के विविधि भेद प्रभेद और महात्म्यों का वर्णन किया गया है। मनुष्य में विवेक का अंश कम और रूढि का अंश अधिक होता है। जैसे स्वास्थ्य ठीक न होते हुए भी त्यौहारों के दिन रूढि वश लोग पकवान ही बनाते और खाते हैं उसी प्रकार नियत अवसरों पर अनिच्छा होते हुए भी

दानादि सत्कर्म करने पडते हैं। उत्तम कर्म का फल उत्तम ही उत्तम होता है चाहे वह इच्छा से, अनिच्छा से, या किसी विशेष अभिप्राय से किया जाय। श्राद्ध के बहाने जो दान धर्म किया जाता है उसका फल उस दान करने वाले व्यक्ति को अवश्य ही प्राप्त होगा। यदि वह पुण्य फल स्वर्गीय पितर को प्राप्त न होता हो तो भी दान करने वाले के लिए वह कल्याण कारक है ही। सत्कर्म कभी भी निरर्थक नहीं जाते। श्राद्ध की उपयोगिता इस लिए भी है कि इस रुढि के कारण अनिच्छा पूर्वक भी धर्म करने के लिए विवश होना पडता है।

श्राद्ध से श्रद्धा जीवित रहती है। श्रद्धा को प्रकट करने का जो प्रदर्शन होता है वह श्राद्ध कहा जाता है। जीवित पितरों-गुरुजनों के लिए श्रद्धा प्रकट करने—श्राद्ध करने के लिए—उनकी अनेक प्रकार से सेवा, पूजा, तथा सन्तुष्टि की जा सकती है। परन्तु स्वर्गीय पितरों के लिए श्रद्धा प्रकट करने का अपनी कृतज्ञता को प्रकट करने का कोई निमित्त निर्माण करना पडता है। यह निमित्त-श्राद्ध है। स्वर्गीय गुरुजनों के कार्यों-उपकारों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने से ही छुटकारा नहीं मिल जाता। हम अपने अवतारों देवताओं, ऋषियों, महापुरुषों, और पूजनीय पूर्वजों की जयन्तियां धूमधाम से मनाते हैं, उनके गुणों का वर्णन करते हैं। उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हैं और उनके चरित्रों एवं विचारों से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। यदि कहा जाय कि मृत व्यक्तियों ने तो दूसरी जगह जन्म ले लिया होगा उनकी जयन्तियां मनाने से क्या लाभ? तो यह तर्क बहुत अविवेक पूर्ण होगा। मनुष्य मिट्टी का खिलौना नहीं है जो फूट जाने पर कूड़े के ढेर में तिरष्कार पूर्वक फेंक दिया जाय। उसका कीर्ति शरीर युग युगान्तों तक बना रहता है, और वह उतना ही काम करता रहता है जितना कि जीवित शरीर काम करता है। आज मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर कृष्ण, दानी कर्ण,त्यागी दधीचि, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, ध्रुव, प्रहलाद, वीर हकीकत राय, वन्दा-वैरागी, शिवाजी, राणाप्रताप, तपस्वी तिलक, शंकराचार्य, गौतम बुद्ध, महावीर, नानक, कबीर आदि जीवित नहीं है,पर उनका कीर्ति-शरीर उतना ही काम करता है जितना कि उनके जीवित शरीर ने किया था। करोड़ों व्यक्तियों को उनसे प्रेरणा और प्रकाश प्राप्त होता है।

मनुष्य प्राणी भावना प्रधान है। व्यापारिक दृष्टि कोण से ही वह हर पहलू को नहीं सोचता, वरन् अधिकांश कार्य अपनी अन्तः वृत्तियों को तृप्त करने के लिए करता है। वृद्ध पुरुषों की सेवा, बालकों के भरण पोषण की कठिनाई, पीड़ितों की सहायता, पुण्य परोपकार आदि में व्यापरिक दृष्टि से कोई फायदा नहीं। यदि केवल व्यापार बुद्धि ही प्रधान हो तो बूढ़े माता पिता को कोई रोटी न दे? बच्चों को पालने पोसने, पढ़ाने, विवाह आदि करने का झंझट उठाने के लिए कोई तैयार न हो, दीन दुखियों की सहायता में कोई समय या पैसा न दे? ऐसा प्रवृत्ति हो जाने पर तो मानव जाति पिशाचों की सेना बन जायगी। पर सौभाग्य से ऐसी नहीं है। मनुष्य भावना शील प्राणी है, वह प्रत्यक्ष लाभ की अपेक्षा अप्रत्यक्ष, हृदय गत भावनाओं को प्रधानता देता है। कृतज्ञता उसकी श्रेष्ठ वृत्ति है। इसे वह जीवितों के प्रति ही प्रकट करके संतुष्ट नहीं रह सकता। मृतकों के उपकारों के लिए भी उसे श्राद्ध करना पड़ता है।

संसार के सभी देशों में, सभी धर्मों में सभी जातियों में किसी न किसी रूप में मृतकों का श्राद्ध होता है। मृतकों के स्मारक, कब्र, मकबरे संसार भर में देखे जाते हैं। पूर्वजों के नाम पर नगर, मुहल्ले, संस्थाऐं, मकान कुए,तलाब, मन्दिर,मीनार आदि बनाकर उनके नाम तथा यश को चिरस्थायी रखने का प्रयत्न किया जाता है। उनकी स्मृति में पर्वों एवं जयन्तियों का आयोजन किया जाता है। यह अपने अपने ढंग के श्राद्ध ही है। "क्या फायदा?" वाला तर्क केवल हिन्दू श्राद्ध पर ही नहीं समस्त संसार की मानव प्रवृत्ति पर लागू होता है। असल बात यह है कि प्रेम,उपकार,आत्मीयता, एवं महानता, के लिए मनुष्य स्वभावतः कृतज्ञ होता है और जब तक उस कृतज्ञता के प्रकट करने का, प्रत्युपकार स्वरूप कुछ प्रदर्शन न करले तब

वनास्पति घी।

(श्री जयदयालजी गोयन्दका)

आजकल जो वेजिटेबल (वनास्पति) घी का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, यह हमारे देश के लिये बड़ा ही घातक है। इससे स्वास्थ्य और धर्म की बड़ी हानि हो रही है। असल में यह घी है ही नहीं। यह तो जमाया हुआ तेल है। यह मूगफली, नारियल तथा बिनौले आदि के तेलों से एवं मछली के तेल से तैयार होता है। इसके बनाने में निकिल धातु तथा हाईड्रोजन गैस काम में लिया जाता है। वह चीजें अपवित्र तो हैं ही, पर स्वास्थ्य के लिये भी महान हानिकर हैं। निकिल में एक प्रकार का विष होता है। इनसे तेल जम जाता है। उसकी गन्ध नष्ट होजाती है और सफेद रङ्ग बन जाता है।

इस विषय में बङ्गाल के प्रसिद्ध रासायनिक तथा 'खादी-प्रतिष्ठान' के संचालक सोदपुर निवासी श्री सतीशबाबू से गीताप्रेस के मन्त्री श्री घनंश्यामदास जालान तथा मैनेजर श्रीबजरङ्गलाल चाँदगोठिया मिले थे। उन्होंने यही कहा कि यह बेजिटेबल घी सभी प्रकार के तेल या चर्बी आदि से बन सकता है और निकेल डाल देने के कारण इसके बनने पर इसकी परीक्षा करने के लिये कोई ऐसा यन्त्र नहीं है जिससे यह पता चल सके कि यह मूगफली के तेल से बनाया गया है या मछली के तेल से। जिस समय जो तेल सस्ता होता है उसी से यह बनाया जा सकता है। इस समय बँगाल आदि में मूङ्गफली का तथा मछली का तेल अन्य सब तेलों से सस्ते हैं, इसलिए इस समय यह मूङ्गफली तथा मछली के तेल से बनाया जाता है।

वेजिटेबल घी बनानेवाले भाई कई गारंटी भी देते हैं कि यह मूङ्गफली के तेल से बना है किन्तु उस गारंटी का कोई मूल्य नहीं, क्योंकि इस घी के बनने पर इसकी कोई परीक्षा नहीं कर सकता कि यह किससे बना है। रही विश्वास की बात सो विश्वास इसलिये नहीं किया जा सकता कि जिस समय मूङ्गफली के तेल की अपेक्षा मछली का तेल सस्ता होगा उस समय वे मूँगफली के तेल से ही यह चीज बनायें यह बात नहीं समझ में आती। क्योंकि मनुष्य लोभ के वश में होकर कौनसा पाप नहीं कर सकता?

मछली का तेल महान् अपवित्र तो है ही, इसके अलावा, इसमें निरपराध मछलियों की हिंसा भी होती है। और फिर इसे बनाने के लिए इसमें जो निकल धातु का प्रयोग किया जाता है, उससे धर्म की हानिके साथ-साथ स्वास्थ्य की हानि भी होती है। देश के पशुओं की हानि भी होती है क्योंकि इसके सामने गाय-भैंस का घी मूल्य में नहीं टिक सकता। असली घी की बिक्री हुये बिना किसान लोग गाय-भैंस नहीं पाल सकेंगे। गायों के बिना बैल नहीं मिलेंगे, बैलों के बिना खेती नहीं हो सकेगी और खेती के बिना प्रजा का जीवन बहुत ही कष्टमय और निराशापूर्ण हो जायगा। यह बात बहुत लोग अनुभव कर चुके हैं कि वेजिटेबल

तक उसे आन्तरिक बेचैनी रहती है, इस बेचैनी को वह श्राद्ध द्वारा ही पूरी करता है। ताज महल क्या है? एक पत्नी का उसके पति द्वारा किया हुआ श्राद्ध है। इस श्राद्ध से उस पति को क्या फायदा हुआ यह नहीं कहा जा सकता पर इतना निश्चित है कि पति की अन्तरात्माको इससे बड़ी शान्ति मिली होगी।

औरंगजेब को उसके पुत्र शाहजहां ने कैद करके जेल में पटक दिया और स्वयं राजा बन गया। जेल में सड़ते सड़ते औरंगजेब जब मृत्यु के निकट पहुंचा तो उसने आंखों में आंसू भर कर कहा— "मेरे इस्लाम परस्त बेटे से तो वे काफिर (हिन्दू) अच्छे जो मृतक पितरों तक को पानी पिलाते हैं।" श्राद्ध और तर्पण का मूल आधार अपनी कृतज्ञता और आत्मीयता की सात्विक वृत्तियों को जागृत रखना है। इन प्रवृत्तियों का जीवित, जागृत रहना संसार की सुख शान्ति के लिए नितान्त आवश्यक है। उस आवश्यक वृत्ति का पोषण करने वाले श्राद्ध जैसे अनुष्ठान भी आवश्यक हैं। — अपूर्ण

घी के खाने से अनेकों बीमारियां होकर मनुष्य की आयु का ह्रास होता है। अतः यह वस्तु देश, धर्म खेती, पशु और स्वास्थ्य सभी के लिये महान ही हानिकारक है।

बाजार में असली घी के नाम से जो घी बिकता है, उस घी में भी लोग सस्ता होने के कारण लोभ-वश इसका मिश्रण करते हैं। घी में इसका मिश्रण कर देने पर इसका पता लगाना बहुत मुश्किल है। असल-नकल की जांच के लिये मशीनें भी आयीं किन्तु उनसे भी इसका पूरा निर्णय न हो सका। नारियल और मूंगफली दोनों के तेलों को मिलाकर अथवा मछली का तेल तथा मूंगफली या नारियल का तेल मिलाकर वेजिटेबल घी बनाया जाय और वह असली घी में मिला दिया जाय तो इन मशीनों से उसका कुछ भी पता नहीं लगाया जा सकता।

इस वेजिटेबल घी के इतने अधिक चल पड़ने के कारण देश धर्म और स्वास्थ्य की रक्षा चाहने वाले भाइयों को आजकल पवित्र घी मिलना बहुत ही कठिन हो गया है। मेरी तो यह राय है कि 'देश धर्म और स्वास्थ्य की रक्षा के लिये मिले, तो शुद्ध घी खाना चाहिये नहीं तो मूङ्गफली का तेल खाना चाहिये। वेजिटेबल घी खाने से व्यर्थ ही अधिक खर्च लगता है और धर्म तथा स्वास्थ्य की हानि होती है, शुद्ध मूङ्गफली का तेल खाने से पैसों की बचत होती है तथा धर्म तथा स्वास्थ्य की भी हानि नहीं होती। अतः वेजिटेबल की अपेक्षा तो शुद्ध मूङ्गफली का तेल ही खाना अच्छा है। हो सके तो दूध खरीदकर उसमें से मक्खन क्रीम या घी निकाल कर उसे खाना चाहिये। इससे पशु, खेती, देश धर्म और स्वास्थ्य इन सबकी रक्षा हो सकती हैं। इस वेजिटेबल घी को किसी प्रकार से भी नहीं खाना चाहिये, चाहे वह केवल वेजिटेबल हो अथवा असली घी में मिला हुआ। न इस घी का लोभवश व्यापार ही करना चाहिये। बल्कि देश, धर्म, पशु, कृषि और स्वास्थ्य की रक्षा चाहने वाले देशसेवक तथा धर्मप्रेमी को इस घी का प्रचार रोकने के लिए कानून की रक्षा करते हुये, यथाशक्ति घोर विरोध करना चाहिये। खेद की बात है कि लोभ के कारण हमारे व्यवसायी सज्जन इसके व्यापार में अधिक अग्रसर हैं। उनसे मेरी खास तौर से प्रार्थना है कि वे इसे देश और धर्म के लिए महान् हानिकारक समझ कर इसको सर्वथा त्याग देने की कृपा करें।

वेद की शिक्षा का सार।

(तैत्तरीय उपनिषद से)

जब आचार्य अपने शिष्य को पढा चुके तो उसे अन्तिम उपदेश यह है :—

(१) सच बोलो, धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय में आलस न करो। आचार्य्य की सेवा करते रहो और गृहस्थ में प्रवेश करके संसार का क्रम प्रचलित रक्खो। सत्य, धर्म, कौशल, स्वास्थ्य के नियम, ऐश्वर्य्य प्राप्ति के साधन करने और पढने पढाने में आलस्य न करो। धार्मिक, पारवारिक और सामाजिक कर्मों के करने में आलस्य न करो।

(२) माता की पूजा करो पिता की पूजा करो, आचार्य्य की पूजा करो, अतिथि (अपरिचित अभ्यागत) का सत्कार करो। भले कर्म करो बुरे कर्म से बचो। हमारे कर्मों में जो अच्छे हैं उनका अनुकरण करो। दूसरों का नहीं। दान श्रद्धा से देना चाहिये श्रद्धा न हो तो भी देना चाहिये।

दान खुले हाथ देना चाहिये। अधिक न हो सके तो थोड़ा ही देना चाहिये। भय (लोक लाज) से भी दान देना चाहिये और इस विचार से भी कि जिस काम के लिये दान मांगा जाता है, वह भला काम है।

यदि तुम्हें किसी काम के सम्बन्ध में संदेह हो कि वह अच्छा है या बुरा है। तो देखो कि कोई ऐसे ब्राह्मण हैं जो समझदार हैं, नेक हैं, कोमल स्वभाव वाले हैं, धर्म को प्यार करने वाले हैं। ऐसे अवसर पर जैसे इन पुरुषों का व्यवहार हो, वैसा ही तुम भी करो।

यह मेरा आदेश है यह मेरा उपदेश है, यह वेद की शिक्षा का सार है, यह वेद शास्त्र की आज्ञा है। इसी प्रकार धर्म का पालन करना चाहिये —

व्यक्तित्व का सन्तुलन।

(प्रोफेसर रामचरण महेन्द्र एम. ए.)

व्यक्तित्व का संतुलन (Personality Integretion) आज केवल कल्पना की वस्तु बन गया है। इसमें आश्चर्य की बात नहीं क्योंकि आज के युवकों के अन्तःकरण विपरीत भावनाओं के संघर्ष से, नाना प्रपंचों झंझटों, ऊहापोह एवं प्रवंचना से युक्त हो रहा है। वे निरन्तर एक आन्तरिक धुएँ की धुंधलाहट में भटक से रहे हैं।

व्यक्तित्व के संतुलन से हमारा अभिप्राय मनुष्य के सागोंपांग सर्वतत्वीय विकास से है। ऐसे व्यक्ति के अन्तःकरण की तमाम शक्तियां समान अनुपात से विकसित होती हैं। वह जीवन में पग पग पर आने वाली कठिनाइयों, प्रतिघात एवं प्रतिकूलताओं को सरलता एवं आसानी से परास्त कर देता है। संतुलित व्यक्तित्व में आन्तरिक संघर्ष नहीं आते, ऐसे प्रतिद्वन्द्वी विचार उदित नहीं होते जिससे निर्णय शक्ति का ह्रास हो। संतुलित व्यक्ति वह निर्वाण पद प्राप्त नहीं करता जिसमें मन आसक्ति रहित हो जाता है। जीवन का आनन्द, जोश, उल्लास (Wormth & Passion) एवं तीखापन उसके जीवन को रंगीन बनाते हैं। उसकी भावनाएँ नियंत्रण से बाहर नहीं निकलतीं। निर्भय, श्रद्धा उत्साह और शान्ति के विचारों में रमण करने के कारण उसका हृदय नन्दनवन स्वर्ग बना रहता है।

उसकी वृत्तियों में समन्वय होता है। वह उस सवार की तरह नहीं होता जो चारों ओर दौड़ना चाहता है। या उस शिकारी की भांति नहीं होता जो एक पत्थर से कई चिड़ियां मारना चाहता है। वह यह जानता है कि वह किधर जा रहा है, और वह किस गति से प्रगति शील हो रहा है।

हममें से प्रत्येक की इच्छा होती है कि किसी प्रकार यह आन्तरिक समस्वरता (Inner Integrity) प्राप्त करें किन्तु ऐसे बहुत कम साधक हैं जिन्हें इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त होती है। असख्य व्यक्ति मनोविकार तथा मनोभाव के स्वार्थी संघर्ष से परेशान रहते हैं।

व्यक्तित्व के सन्तुलन को प्राप्त करने के क्या साधन हैं ? संतुलित मन वाले व्यक्तियों का अध्ययन कीजिए आपको ज्ञात होगा कि उनमें सब इच्छाओं से ऊपर एक प्रदीप्त इच्छा सर्वोच्च भावना रहती है। इसे आप जीवन का मुख्य ध्येय भी कह सकते हैं। इसकी तीव्रता के बहाव में दुष्ट आसुरी भाव, छोटी मोटी कामनाएँ, क्षण भंगुर स्वार्थी विकार सब बह जाते हैं। उस ध्येय के दिव्य प्रकाश के स्पर्श से रोम रोम में सद्बुद्धि का संचार रहता है। चाहे आप विश्व को विजय करने की भावना से अनुप्राणित नैपोलियन को ले लीजिए अथवा वायु शक्ति को पराजित करने वाले चार्ल्स लिन्डवर्ग, या संसार में महात्मा ईसा का सन्देश सुनाने वाले विलियम कैरे Carey) को ले लीजिए, सभी में उच्च ध्येय की यह तीव्रता उपलब्ध होगी।

इस ध्येय में मन, बुद्धि एवं अन्तःकरण की सम्पूर्ण शक्तियों का ऐसा योग होता है कि सफलता द्वार पर खड़ी मिल जाती है। इस सम्बन्ध में एक तत्व परम विचारणीय है ? कौन से जीवन ध्येय सर्वोत्तम एवं कौन से निकृष्ट रहेंगे ? हम इनके तथ्य को कैसे पहिचानें ?

संतुलित व्यक्ति में ईश्वर प्रदत्त एक ऐसी विवेक बुद्धि जाग्रत रहती है, जो नीर-क्षीर विवेक में बड़ी सहायता देती है। व्यक्तित्व तभी ही संघर्षमय विषाक्त एवं असंतुलित बनता है जब यह ध्येय जल्दी में चुन लिया जाता है और कुछ वर्षों पश्चात् गलती मालूम होती है। आन्तरिक कोमलता से युक्त व्यक्ति प्रायः इस आन्तरिक पीड़ा के शिकार बनते हैं।

आत्मसाक्षात्कार से उच्च ध्येय कौन हो सकता है ? महात्मा ईसा ने कहा है—"सर्व प्रथम परमेश्वर के राज्य में पदार्पण करो, उसको दिव्यता एवं सम्पदा को प्राप्त करो। इसी को लक्ष्य कर गीता में निर्देश है—'जो किसी काल में न जन्मता है, न मरता है, न होकर फिर होने वाला है, जो सनातन और पुरातन है, शरीर के नाश से जिसका नाश

बुढ़िया पुराण।

(ले० श्री जगजीवनलाल जी बी० ए० देहली)

पद्मपुराण, गरुड़पुराण, विष्णुपुराण आदि अठारह पुराणों के नाम तो सबने सुने होंगे परन्तु इस उन्नीसवें पुराण का कहीं लेखाजोखा नहीं है। जिस प्रकार वेदों के लेखबद्ध होने से पूर्व वेदों के मन्त्र पिता से पुत्र याद करते चले आते थे इसी प्रकार आजकल भी बूढ़ी स्त्रियाँ इस पुराण का मनन पाठन करती हैं। और अठारह पुराण धरे के धरे रह जाते हैं परन्तु इस उन्नीसवें का निशाना अचूक है। किसी में इतनी शक्ति नहीं कि उसका विरोध कर सके!

हमारी दादी, परमात्मा उन्हें सद्गति दे, इस पुराण की बड़ी निपुण पण्डिता थीं। बात२ में मीन मेष निकालना अपनी बात को प्रधान बनाना उन का नित्य का कर्म था। इस लेख में हम उनके पाण्डित्य के कुछ उदाहरण सबके मनोरंजनार्थ पाठकों के सन्मुख रखेंगे

हमारे पिता महोदय धनाढ्य पुरुषों में गिने जाते थे। संसार में उन्हें सब प्रकार का सुख प्राप्त था केवल दुःख था तो यही कि उनकी कोई सन्तान जीवित न रहती थी। बालक चार वर्ष तक का होकर किसी रोग से पीडित हो संसार त्याग देता था। दो चार बालक नष्ट हो जाने पर हमारी माता पिता तथा दादी के दुःख का वार पार न रहा। किसीने कहा 'आसेब है' ऊपरी पराई का खलल है' किसी ने कहा परियों की छाया है' 'मियां अमरोहे वाले का कोप है' गरज जितने मुंह उतनी बातें। हमारी दादी को भी सोलह आने जम गया कि हो न हो अवश्य ही कोई ऐसी ही बात है। फिर क्या था। स्ियाने दीवाने, मुल्लाने, पीर, फकीर, जाहरपीर सब छान मारे! हमारी माताराम गन्डे तावीजों से गोंदनी की तरह लाद दी गईं। गुड़गांवे की ज्ञात, मीरां की कढाई और दुर्गा की कुर्बानी बोली गई! पीर वख्श स्याना इस असाध्य रोग का चिकित्सक नियुक्त हुआ! धरती में एक गढा खोदा गया उस में माता को खड़ा किया गया! ऊपर से जल गिरा दिया! सामने के कमरे में एक बकरे को कुर्बान करके माता के ऊपर से वार कर चौराहे पर रात के बारह बजे रखवा दिया। लौंग का जोड़ा चावल सेंदुर और रोली से उस ढोंग की हाट को सजाया गया। परन्तु बात रह गई। हमारा जन्म हुआ और हम जी गये! दादी ने कहा "रामजी रखों बालक कितने २ जतन से जीया है। इसका नाम भी ऐसा ही रखूंगी" दादी की व्यवस्था पर न ओम्प्रकाश न विद्याभूषण, हमारा नाम रक्खा गया "कूडामल"। एक तो हमारी सूरत ही भौंडी सी थी जिस पर नाम ने तो सोने पर सुगन्ध का काम दिया। जिस दिन हमारा जन्म हुआ प्रसव ग्रह में गन्धक की धूनी दी गई! उठावने के पांच पैसे रखे गये। जब दादी अथवा और कोई बाहर से आता तो थोडी सी गन्धक आग पर डाल दी जाती थी, उनके विचार में भूत प्रेतों से बचने के लिये यह आवश्यक पदार्थ था। यदि कभी माता हमें अकेला दुकेला छोड़ कर चली जाती थी तो उनकी जान को आ जाती 'तुम्हें जरा खयाल नहीं! कन्हें को अकेला छोड कर चल दीं यदि परछावां पड जाय तो पेट पकड़े २ फिरोगी!' हमारे जन्म के कई दिन पीछे हीजड़े और भांडों को खूब वेले मिलीं। वर्ष भर के अन्दर २ दादी ने सब देवी देवताओं को मना लिया। नये बस्त्र पहनने हमारे लिये निषेध कर दिये गये, हाँ औरों के बनाये हुये पुराने वस्त्र हमें पहनाये जाते थे। जब हम वर्ष भरके हुये तो कमेटी का आदमी

नहीं होता"—ऐसे परमपदार्थ की प्राप्ति ही मानव जीवन का परम ध्येय है।

इस परम ध्येय में मन, वचन, कर्म से संलग्न हो जाने से चित्त कुसुम की कलियां प्रस्फुटित हो जाती हैं और संघर्षमय स्थिति दूर हो जाती है। ऐसे साधक का मन सदा एकरस रहता है।

टीके लगाने आया परन्तु हमारी दादी ने शीतला महारानी के कोप के भय से दो चार रुपये देकर उसे टाल दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि ६ वर्ष की आयु में हमें चेचक ने आ लिया और एक आंख उसी ढकोसले की भेंट करके आज काणे राजा के नाम से प्रसिद्ध हैं। शरीर देखो तो उसमें आध २ इन्च के गढ़े जैसे किसीने सिल खोट दी हो। करेला कुछ करवा कुछ नीम चढ़ा। यदि दोपहर को हम कहीं जाते तो दादी प्यार से कहती 'बेटा दोपहर को बाहर न फिरा करो चुड़ैलों का बासा होता है' यदि मैं दूध पीकर कहीं बाहर जाता तो राख चटाकर जाने देती थीं। आंखों में काजल डालतीं तो मस्तक पर काला टिमकना अवश्य लगा देती थीं। एक दिन मैंने कहीं जाने को सुन्दर वस्त्र पहने, माता कहने लगी 'आज तो कूड़ा बड़ा सुन्दर लगे?' दादी तुरन्त बोल उठी 'थूक थूक कहीं नजर न लग जाय' वहां से लौट कर मेरा स्वास्थ्य कुछ ठीक न रहा तो दादी बोली 'मैंने पहले ही न कहा था कि नन्हें को नजर लग जायगी अब नोन, मिरच राई वार कर चूल्हे में डाल। देख धसक आती है या नहीं! अगर धसक न आई तो स्याने को बुलाना पड़ेगा।' हमारे जनम पर पंडित विद्याधर ने जन्मपत्री बनाई और कहा बालक बड़ा भाग्यशाली है परन्तु दसवें वर्ष में पिता को भारी है! इसका उपाय कराओ। राहू चौथे और केतु सातवें घर में है। शनि राहू का स्थान लेना चाहता है दोनों का युद्ध है। शनि महाराज को शान्त करने का उपाय करो अन्यथा बड़ा कष्ट होगा। दादी के आग्रह पर पन्द्रह दिन (एक २) रु० रोज पर पंडित जी से जप कराया। शनिवार को छाया दान हुआ तेल और तांबे का दान हुआ, डाकौत ने पूजन कराया। इस प्रकार चालीस पचास रुपये शनि को शान्त करने में लग गये। एक दिन लछमनिया दासी धूप में पडी थी मैं उसे उलांघ गया दादी ने कहा 'बेटा किसी को उलांघा नहीं करते इससे उसकी आयु कम हो जाती है।' हव्वे के डर से हमें कायर वीर बना दिया था। जब कभी रोते तो दादी कहती 'बहू दे क्यों नहीं देती अफीम कुछ देर चैन से तो सोये।'

छः वर्ष के होकर हम पाठशाला में प्रविष्ट हुए। एक दिन जब पाठशाला जाने को तैयार थे कि भौंदू नौकर ने छींक दिया। दादी बोली 'टेर जा बेटा अभी छींक हुई।' जब परीक्षा के दिन होते तो दही पेडा खिला कर भेजती। यदि मार्ग में ब्राह्मण मिल जाता तो और अनर्थ होने का डर होता था। यदि पानी वाला भरे हुए कलसे या मेहतर भरा हुआ टोकरा लिए सामने आ जाता तो बस परीक्षा में उत्तीर्ण होने में शंका न रहती थी। पिता जी मेरठ को नौचन्दी देखने जा रहे थे। हम पूछ बैठे 'बाबूजी कहां जा रहे हो।' दादी ने कहा 'मेरे मुन्ना, जाते हुये किसी को टोका नहीं करते।'

दादी की बान कुछ बडबडाने की थी। बात २ में शगुन अपशगुन का अनुमान कर लेती थीं। प्रातःकाल पूजा करके आई है कह रही है 'न जाने किस डायन का मुंह देखकर उठी हूं। दाईं आंख फड़क रही है न जाने आज भोजन भी मिलेगा या नहीं।' बालक खेल रहे हैं और वहां जा पहुंची देख कर कह रही है 'बालकों को तराजू का खेल हो गया है घडी घडी कन्धे पर धरते हैं तभी तो अनाज को आग लग गयी!' दादी के जलाने को यदि हमने कभी छलनी सिर पर रखली तो चिल्ला उठी 'अरे मूर्ख, रख दे बूढ़े बाबा नाराज हो जायेंगे, फोड़े फुंसी करेगा क्या?

दालान में आई हैं पान खाते २ कह रही हैं 'कल से गले में दर्द हो रहा है न जाने किसने पानदान ठुकरा दिया है' इतने में लछमनिया बीच में से आग लेकर निकलीं वहीं से बरस पड़ीं 'मैंने मूंडी काटी को दसियों बेर समझाया है कि बीच में से आग लेकर न निकला कर। किसी से बैर करवायेगी?' यदि बीच में माता कुछ बोली तो उन्हीं पर उलट पड़ीं 'बहू सबेरे से तीन बार मेरे मुंह आ चुकी हो कहीं खुरेड़े पलङ्ग पर तो सोकर नहीं उठी हो!' कुरती सीने बैठी हैं इतने में नायन आ जाती है! आप ही आप बड़बड़ा

कर कहती हैं ! 'न जाने किस निगौडी को पैरा है अभी कुरता लेकर बैठी थी, यह आगई, आज तीन दिन होगये वह कुरता ही खडा न कर सकी, जाने इसका महूरत कब आवेगा !' आंधी वर्षा आ रही है माता समझा रही है नंगे सिर क्यों फिर रही ह। इसी प्रकार प्रातःकाल से सायंकाल तक चिन्दी की बिन्दी निकालती रहती थी ! होली के दिन थे लोग जादू टौने की चिन्ता में लग रहे थे ! तिराहे चौराहों पर बहुत सा सामान कुत्ते बिल्ली खाते फिर रहे थे ! दादी ने मने कर दिया वहाँ न जाना किसी की झपेट में आ जाओगे ! होली का दिन आया उस दिन आटे का दीपक कुछ रोटियां, चावल हमारे ऊपर से वार कर चौराहे पर रखवा दिये गये ! चौराहे पर भिश्ती मशक लिये खड़ा था उसने पैसा लेकर पानी बहा दिया।

बालकों के गले में मेवा के हार डाले गये ! खूब होली मची ! रंग, गुलाल, कीचड़, कालिख, सुनहरी रौगन, कौन सी वस्तु थी जो इस सुअवसर पर काम में न लाई गई हो। हमारे चाचा साहिब ऐसी होली से कोसों दूर भागते थे ! द्वार बन्द करके घर में बैठ जाते थे। इसी पर दादी बिगड़ बैठतीं 'आभागा है वर्ष भर का त्यौहार है ! नहूसत फैला रखी है ! न किसी से बोलना न चालना !, होली के कुछ दिन पीछे बसौड़ा आता । इसमें घर भर बासी खाने में ही सौभाग्य समझता है ! मिट्टी के सैनक (बर्तन), सराई कुल्हिय रोर्ट, चावल, मसूर की दाल, बिनौले, कच्चे चने, सूत का गोला, कढी, कागम का ताव यही सब वस्तुएं चौराहे की मातारानी की भेंट चढ़ाई जाती थीं ! जिन्हें महतर अपने टोकड़े में भरता जाता था। बची खुची चीजें कुत्ता खाकर पेशाब कर जाता था। सब बालकों को कौडियों के हार पहनाये जाते। झंडू महतर एक मुर्गा लिए खड़ा रहता था और प्रत्येक बालक के सिर पर से फड़फड़ाता और दक्षिणा लेता जाता था, यह सब काम दादी की आज्ञानुसार होता था । न जाने इतनी बातें दादी याद क्यों कर रखती थीं ! लड़का बी० ए०, एम० ए० की परीक्षा पास करते ही सब पढ़ा लिखा भूल जाते हैं परन्तु वह मरते दम तक कभी एक बात में भी फेल न हुईं । गली मुहल्ले, जाति बिरादरी में इसी से उनका मान था । प्रत्येक गूढ विषय में उन्हीं से व्यवस्था मांगी जाती थी । जब मुझे भली प्रकार ज्ञान होगया तो मैंने एक दिन दादी से पूछा 'दादी ये सब बातें कौन से पुराण, वेद, शास्त्र, संस्कार विधि, शासनपद्धति में लिखी हैं दादी मन ही मन बुडबुडाने लगीं "न जाने यह मुये आरिया कहां से पैदा हो गये हैं। सारा धरम करम भाग के भाड में चला गया । बेटा तुम इन बातों को क्या जानों। बडी गूढ हैं। बड़े बूढ़ों की चलाई हुई हैं।' मैंने कहा तो यह कहो बुढ़िया पुराण की बातें है।

जब अन्तःकरण में शान्ति होती है तो दुनियां का कोई कोलाहल मनुष्य को स्पर्श नहीं कर सकता ।

× × ×

जीवन उसीका धन्य है जो अनेकों को प्रकाश दे। प्रभाव उसी का धन्य है जिसके द्वारा अनेकों में आशा जागृत हो।

× × ×

जो व्यक्ति दूसरों से जितनी घृणा करता है समझिए कि वह परमात्मा से उतनी ही दूर है।

× × ×

यदि सफलता चाहते हो तो अध्यवसाय को मित्र, अनुभव को सलाहकार, सावधानी को सहचर और आशा को अभिभावक बनाओ।

× × ×

भोगी पुरुष खाने के लिए जीते हैं और योगी पुरुष जीने के लिए खाते हैं।

× × ×

अपने नियम की सुदृढ जंजीर से जकडा हुआ पक्षपात रहित, सृष्टि संचालक, पाषाण हृदय जो न्यायाधीश है वही ईश्वर है।

स्त्रियाँ और व्यायाम।

(लेखिका—श्री देवी श्यामलता "कमलिनी")

आजकल स्त्रियों का स्वास्थ्य बहुत खराब रहता है, वे आए दिन रोगों से घिरी रहती हैं। आज एक रोग है तो कल दूसरा अपना आक्रमण कर देता है—इसका मुख्य कारण है उनमें शारीरिक व्यायाम का सर्वथा अभाव! शरीर को स्वस्थ और सुन्दर बनाए रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को कुछ व्यायाम अवश्य करना चाहिए। स्त्रियों के शरीर में एक प्रकार की स्वाभाविक कोमलता होती है और इसके विपरीत पुरुषों के शरीर में एक प्रकार की दृढ़ता और कठोरता। कुछ स्त्रियां व्यायाम करने से इसलिए घबराती हैं कि ऐसा करने से उनकी स्वाभाविक कोमलता नष्ट हो जायगी, किन्तु ऐसा समझना भूल है। व्यायाम से तो उनकी कोमलता तथा सौन्दर्य को विशेषरूप से जीवन मिलता है। हां यह अवश्य है कि उनके लिये भिन्न प्रकार के व्यायाम की आवश्यकता है।

प्राचीनकाल में भारतीय महिलाएँ अपना और अपने कुटुम्ब का सब काम अपने हाथ से किया करती थीं, पर आज अपने हाथ से पानी पीना भी दुष्कर मालूम होता है, यही कारण है कि उनका स्वास्थ्य बराबर भङ्ग होता जा रहा है और युवावस्थामें ही उन्हें अपना जीवन नीरस प्रतीत होने लगता है। पहले चर्खा चलाना, पानी भरना आदि कामों के करने से पर्याप्त व्यायाम हो जाता था, उन्हें अन्य किसी व्यायाम की आवश्यकता नहीं रहती थी—आज यह सब काम मशीन और भृत्यों द्वारा सम्पादित होने लगे, विलास प्रियता दिन पर दिन बढने लगी अतएव स्वास्थ्य भी बराबर गिरता गया। स्वास्थ्य-सुखको पुनः प्राप्त करने के लिए व्यायाम करना नितान्त आवश्यक है अतएव यहां कुछ-स्त्रियोपयोगी साधारण व्यायामों का उल्लेख किया जाता है जिन्हें नियम पूर्वक करके वे अपने स्वास्थ्य और सौन्दर्य में आश्चर्यजनक परिवर्तन कर सकेंगी।

प्रथम—अभ्यास।

प्रायः सभी स्त्रियां यह चाहती हैं कि उनकी कमर स्थूल न होने पाये। विदेशों में तो कमर को पतला बनाए रखने के लिए लड़कियां आरम्भ से ही पेटियां पहिनती हैं किन्तु इस अप्राकृतिक ढङ्ग का अनुसरण करने की अपेक्षा यह अच्छा है कि प्राकृतिक व्यायाम द्वारा कमरको पतला बनाया जाय। ऐसा करने से कमर में किसी प्रकार की भी निर्बलता नहीं आयगी अभ्यास के लिए जमीन पर बैठ जाओ और दोनों पैरों को सामने की तरफ जमीन पर फैलाओ। पांव एक दूसरे से कुछ अन्तर पर रहें। दोनों हाथों को कन्धों की सीध में ही ऊपर उठाओ। ऐसा करने से शरीर को ऊपर खींचने में सहायता मिलेगी। एक सैकिंड तक अपने शरीर को इसी स्थिति में रखो। फिर शरीर को बायीं ओर को घुमाओ और कमर को इस प्रकार झुकाओ कि दोनों हाथों को कन्धों की सीध में रखते हुए बायें हाथ से दोनों पैरों के बीच की जमीन को छू सको। एक सैकिंड तक इसी स्थिति में रहो, फिर पहली स्थिति में आजाओ और अब दाहिनी ओर को घूम कर यही क्रिया करो। शरीर को झुकाते और घुमाते समय दो बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। दोनों हाथ कन्धों की सीध में रहें और शरीर को झुकाते समय कमर का नीचे का भाग ही मुड़े, कमर और गर्दन एक सीध में रहें।

इस अभ्यास को दस बारह बार करना चाहिए, आरम्भ में शुद्धता का विचार रखते हुए धीरे-धीरे करना चाहिए। अभ्यास होजाने पर अधिक बार और शीघ्रता से कर सकती हैं।

द्वितीय-अभ्यास।

पृथ्वी पर सिर और टांगे, ऊपर को करके सीधी खड़ी होजाओ। प्रारम्भ में इसका अभ्यास १ मिनिट तक करना चाहिए, धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिए। इसे शीर्षासन कहते हैं। यह स्त्री और पुरुष दोनों ही के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसका नियमित रूप से अभ्यास करने से कोष्ठबद्धता (कब्ज) रोग कभी नहीं होता। शरीर में स्फूर्ति

रहती है, भूख खुल कर लगती है और बल की वृद्धि होती है।

तृतीय–अभ्यास।

कमर के बल लेट जाओ। दोनों पैर मिले और हाथ के कन्धों की सीधमें रहें। दाहिने पैर को ऊपर उठाओ और ऊपर की ओर बिल्कुल सीधा खड़ा करलो। फिर इसे सीधा रखे हुए ही बायें पैर के ऊपर ले जाओ और पैर के बायीं ओर की भूमि छूने दो। फिर पहली स्थिति में लाकर जमीन में सीधा खड़ा कर लो। तत्पश्चात् पैरको सबसे पहली हालत में ले जाओ इसी प्रकार बायें पैर से अभ्यास करो। इस अभ्यास को दस बार करो।

चतुर्थ–अभ्यास।

जमीन में बैठ कर पांव फैला दो और हाथों से पांव की उंगलियां पकड़ने का प्रयास करो और ध्यान रखो कि पैर में बल न पड़ने पावें और न घुटने ऊपर को उठें। अपना सिर घुटनों पर टेकने का प्रयत्न करो।

उपर्युक्त भारतीय व्यायाम पद्धति के आसन हैं, इस प्रकार के अनेकों आसन हैं। यदि आपको अन्य प्रकार के व्यायाम ज्ञात हों और वे उपयोगी भी हों तो उन्हीं को कीजिये।

इसके अतिरिक्त स्त्रियों के लिये संगीत और नृत्य भी सुन्दर व्यायाम हैं। नृत्य बहुत उपयोगी, सस्ता और अच्छा व्यायाम है। यह जितना सरल है उतना ही मनोरञ्जक भी है. यह व्यायाम स्त्री-शरीर को परिपुष्ट और सुसंगठित बना देता है, मैं स्वयं प्रतिदिन नियम पूर्वक आध घण्टे नृत्य किया करती हूं। संसार के प्रायः सभी देशों में इसका प्रचार है विशेष कर पाश्चात्य देशवासी स्त्रियां इसे खूब पसन्द करती हैं। आयुर्वेद के मतानुसार भी यह स्त्रियों के लिये अत्यन्त लाभप्रद है, स्त्रियों के अनावश्यक मोटेपन को दूर करने, जंघाओं, बाहुमूलों और वक्षस्थल को परिपुष्ट बनाने कमर व उदर प्रदेशों को क्षीण करने के लिए नृत्य अत्यन्त सुन्दर व्यायाम है। नृत्य से शरीर में दृढता और सम्पूर्ण अंगों में कोमलता उत्पन्न होती है, नृत्य की भाँति संगीत भी बड़ा उपयोगी व्यायाम है, यह भी एक कला है–गाना गाने से फेफड़ों को बल मिलता है, फेफडों का विकास होकर उनकी पुष्टि होती है और सदा स्वस्थ रहते हैं।

जो स्त्रियाँ अस्वस्थ हों या वृद्ध हों और किसी भी प्रकार का व्यायाम करने में असमर्थ हों, उन्हें चाहिए कि वे सवेरे और शाम दोनों समय वायु में भ्रमण करें टहलना भी एक बहुत ही उत्तम व्यायाम है, मील आध मील स्वच्छ वायुमें भ्रमण करना स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त लाभदायक है। लम्बे २ डग रखते हुए निश्चित गति से चलना चाहिए। इससे अंग सुडौल होते हैं और रगों में चुस्ती आती है।

व्यायाम करने के बाद निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना अत्यन्त आवश्यक है।

(१) व्यायाम करने के पश्चात् कमसे कम एक घण्टे बाद स्नान करना चाहिए या कोई चीज खानी चाहिए।

(२) व्यायाम अपनी सामर्थ्य से अधिक नहीं करना चाहिए पर प्रतिदिन नियम पूर्वक करना चाहिये और बीच में छोड़ देना नहीं चाहिए।

(३) मासिकधर्म के समय ७ दिन तक व्यायाम नहीं करना चाहिए।

(४) गर्भावस्था में या प्रसूतावस्था में भी व्यायाम नहीं करना चाहिये। —वैद्य

पाप और पारा कोई पचा नहीं सकता। यदि कोई पारा खाले तो किसी न किसी दिन वह फूट कर शरीर पर निकल आवेगा। पाप का भी यही हाल है।

× × ×

ज्ञान का अर्थ घटनाओं अथवा तथ्यों की जानकारी नहीं है। हो सकता है कि किसी मनुष्य को सारी दुनिया की जानकारी हो और फिर भी वह ज्ञान शून्य ही हो।

× × ×

भावना ही प्रधान है।

यह कुछ नियम नहीं है कि छोटे काम का फल छोटा हो और बड़े काम का फल बड़ा हो। विचार की सृष्टि में तो ऐसा नियम है कि किस उद्देश्य से काम किया गया है इसीको देखते हैं। इससे एक छोटासा काम भी शुभ उद्देश्य से किया होतो उसका बहुत बडा फल मिलता है और बहुत बडा काम भी भी अगर खरावनिष्ठा से किया हो तो उसका अच्छा फल नहीं मिलता। कितने ही बार मन्दिर बनाने वाले अभिमानियों के काम की ईश्वर के दरबार में जितनी कीमत होती है उससे अधिक ऊँची दशा उसी मन्दिर में भली निष्ठा से झाडू देने वाली अज्ञान स्त्रियों की होती है। हराम के पैसे जोडकर पीछे उससे सदावर्त चलाने वाले सेठ साहूकारों को जो फल मिलता है। उससे अच्छा फल उन लोगों को मिलता है जो सदावर्त में खिचडी खाकर परमात्मा का पूर्ण उपकार मानते हैं इसका वदला चुकाने के लिये अच्छे कामों में लगे रहते हैं इसी प्रकार हर एक विषय में समझना चाहिये क्यों कि हमारे कामों से ईश्वर की दरवार में हमारी परीक्षा नहीं होती वल्कि किस इच्छा से हमने काम किया है। यही वहां देखा जाता है अगर ईश्वर के घर यह कानून हो कि जो बडा काम करे उसी को फल मिले और उसी का उद्धार हो तब फिर गरीबों का क्या हाल हो? वे बेचार कैसे तरें ससार में सभी आदमियों को तालाब खुदवाने 'धर्मशाला वनवाने' दवाखाना खुलवाने 'सदावर्त चलाने' 'मन्दिर की स्थापित करने' पुस्तक लिखने व्याख्यान देने और ऐसे ही ऐसेबड़े काम करने का सुभीता थोड़ा है? नहीं है। ऐसे बड़े काम न करने वालों को अगर बडा फल न मिले तो जीव कैसे तर सकता है। अगर ऐसा ही होता तो फिर प्रभु की प्रभुता क्या होती? पन्तु उसकी दया है कि भली इच्छा से किये हुए छोटे से छोटे काम से भी मनुष्य आगे वढ सकता है। और भली इच्छा से किये हुए छोटे काम का भी वडा फल मिल सकता है। इसलिये हमें छोटे बड़े करम का ख्याल करने जरूरत नहीं है। क्योंकि छोटा या बड़ाकाम संयोगके आधार पर है।

जिसके पास जिस किस्म का साधन है। और जिसके मनमें जितना बल है तथा किसकी आत्मा जितनी खिली हुई है उसी के हिसाब से वह छोटा या बडा काम कर सकता है। इतना ही नहीं वल्कि कितनी ही वार खराव निष्ठा से भी दानी अभिमान के कारण मान पाने के लिये 'खिताव लेने के लिये परिवार के किसी आदमी को खुश रखने के लिये या ऐसे ही किसी दूसरे कारण से लोग कोई वड़ा या अच्छा काम कर देते हैं पर जो काम भली इच्छा से अपना कर्त्तव्य समझ कर किया जाता है उसकी बात ही कुछ और है? इसलिये अगर आपसे कोई बडा काम न हो सके तो कुछ परवा नहीं पर भली इच्छा से छोटे छोटे शुभकर्मों को सदा किया करें। भली इच्छा से किये हुए छोटे कामों का भी परिणाम बहुत बडा है और ईश्वर दयालु है कि अगर हम अच्छी इच्छा से किसी को एक लोटा पानी दें तो उससे ईश्वर तालाब बनवाने का पुण्य दे देता है। किसी लाचार दुःखिया को दिलासा दें तो उससे वह शास्त्र अध्ययन का करने का फल दे सकता है। दे देता है। किसी मरते हुए आदमी की सुश्रूषा करें तो उससे वह औषधालय की खुलवाने का फल दे देता है। और किसी लावारिस गरीब लड़के का पोषण करें या उसे किसी अनाथालय में भेज दें तो वह एक आदमी की जिन्दगी सुधारने का फल दे देता है। इसी प्रकार छोटे से छोटे काम भी भली इच्छा से किये हुए हों तो उनका वडा फल है। और हजारों लाखों रुपये की लागत के बड़े काम भी अगर खराब विचार से किये हों तो उनका कुछ अच्छा फल नहीं मिलता।

ज्ञान का अर्थ है—जानने की शक्ति। सच को झूठ से, और झूठ को सच से प्रथक करने वाली जो विवेक बुद्धि है उसीका नाम विवेक वुद्धि है।

× × ×

दोषों को छिपाने से काम न चलेगा।

———

जिन्हें मानसिक बल नहीं है। वेही अपना दोष स्वीकार करने में थरथराते हैं, वे यह नहीं सोचते के अपराध स्वीकार करना हृदय की दुर्बलता न होकर हृदय का महत्व है। अपना दोष प्रकट कर देने से ही मनुष्य निर्दोष होता है उस के मन में शान्ति प्राप्त होती है, चरित्र निर्मल होता है और अपयश के बदले सुयश प्राप्त होता है। अनुचित कर्म करके दोष स्वीकार करना साधुओं का काम है। जो लोग दोष छिपाते हैं उन्हें चोर समझना चाहिये। जो अपना दोष जितना ही छिपाने की चेष्टा करता है। उतना ही वह अपने को दोषी बनाता है। अपने दोषों को छिपा कर कोई साधू नहीं कहला सकता, साधु तभी कहला सकता है जब वह अपना दोष साफ साफ प्रकट कर दे और अपने किये हुए दोषों पर पश्चाताप करे।

दोष छिपाने के लिये झूठ बोलना एक दोष के रहते दूसरा दोष करने के बराबर है। दोष से दोष का उद्धार कभी नहीं हो सकता। कीचड़ से कोई कीचड़ का दाग साफ नहीं कर सकता। आग से कोई आग को नहीं बुझा सकता है जैसे आग बुझाने के लिये पानी आवश्यक है वैसे ही दोष को दूर करने के लिये सत्य की आवश्यकता है इसे भली भांति याद रक्खो कि झूठ के छिपाने के लिये दूसरे झूठ की आवश्यकता पड़ती है अथात् जहां मुँह से एक बात झूठ निकली तहां दूसरी झूठ आपसे आप आ खड़ी होता है। एक के लिये न मालूम कितने झूठ बोलने पड़ते हैं। इससे उत्तरोत्तर दोषों की ही वृद्धि होती है। जिनका चरित्र बिगड़ा है। जो हृदय के दुर्वल हैं वे अपने दोष छिपाने की बहुत कोशिशें करते हैं। आजकल ऐसे ही लोगों की संख्या अधिक है जो अहङ्कार में फूले रहते हैं। व्यसनों को ही अपना कर्त्तव्य समझते हैं और पढ़ लिखकर भी मूर्खता का काम करते हैं। कितने ही बुद्धि हीन तो जगह जमीन के लिये 'प्रभुता पाने के लिये' क्षणिक सुखभोग के लिये और भी अनेक छोटे-छोटे लाभों के लिये अपने अमूल्य चरित्र को कलङ्कित कर बैठते हैं।

कितने ही लोग अपने दुश्चरित्रजनित दोषों को छिपाने के हेतु बहुत द्रव्य खर्च करके और अनेक प्रकार के वाह्याडम्बर करके सुयश प्राप्त करने की चेष्टा करते हैं। और समय २ पर कृतकार्म भी होते हैं। किन्तु सत्य 'सत्य ही है' असत्य की कभी वृद्धि नहीं होती। इस नियम से उनका नाम और यश थोड़े ही दिनों में लुप्त हो जाता है। जिनका आचरण अच्छा होता है वे वाह्याडम्बर कुछ न करके भी सभ्य समाज में सम्मानित होते हैं और जन साधारण में भी सर्वत्र उनका आदर होता है। जिनका आचरण अच्छा नहीं है। वे यश के लोभ से अनेक अच्छे कामों को भी करके अपने दुश्चरित्र का कलङ्क दूर नहीं कर सकते। उनके विषय में सब लोग यही कहा करते हैं कि "वे कितने ही अच्छे २ काम कर गये सही, किन्तु उनका जीवन पवित्रता से रहित था" ऐसे लोग जन-समाज में धन्यवाद कृतज्ञता के पात्र होते हैं। किन्तु उन पर लोगों की श्रद्धा व भक्ति उत्पन्न नहीं होती हृदय से कोई उन पर प्रेम प्रकट नहीं करता।

———

जिन विश्वासों की प्रेरणा से मनुष्य सत्मार्ग की ओर अग्रसर होता है। उन विश्वासों की धारणा ही बुद्धिमानी है।

× × ×

शास्त्र युद्ध में विजय प्राप्त करने की अपेक्षा आत्म जय करने में अधिक वीरता है।

× × ×

दुनियां में बुराई का कालिमा अधिक है पर वह भलाई की उज्वलता से अधिक नहीं है। यदि यहां भलाई की अपेक्षा बुराई अधिक होती तो कोई भी प्राणी इस संसार में रहना पसंद न करता।

× × ×

जीवन का अन्तिम-अतिथि है—मृत्यु। उससे डरने का मनुष्य ने अपना स्वभाव बना लिया है पर वास्तव में मृत्यु से डरने का कोई कारण नहीं है।

× × ×

हम दुखों को कम कर सकते हैं।

(पं० मुरारीलाल शर्मा सुरस, मथुरा)

मनुष्य जीवन में अनेक प्रकार के कष्ट और दुख भरे पड़े हैं। रोग, आघात, अपूर्णता वृद्धावस्था, आदि शारीरिक कष्ट, शोक, विछोह, चिन्ता, भय, क्रोध. द्वेष आदि मानसिक कष्ट, निर्धनता, दासता हानि, आदि सामाजिक कष्ट और अप्रत्याशित आकास्थित विपत्तियों का टूट पड़ना आदि दैवी कष्ट प्रायः पग पग पर सामने आते रहते हैं। इनसे पूर्णतया बचना किसी के लिए सम्भव नहीं। बड़े-बड़े महापुरुषों और समर्थों को इनके ताप में तपना पड़ा है। तो भी इतना निश्चित है कि सावधान रहने और पहले से बचने एवं उनका मुकाबिला करने की तैयारी करते रहने पर मनुष्य बहुत अंशों में उनसे बचा रह सकता है।

आरोग्य के नियमों पर सावधानी के साथ आरूढ रहने, आहार विहार में नियमिता बरतने और संयम से रहने पर शारीरिक कष्टों से आसानी के साथ हम अपना पीछा छुड़ा सकते हैं। सुसंयमी व्यक्ति अस्वस्थता और अकाल मृत्यु से आमतौर पर बचे रहते देखे गये हैं।

मानसिक कष्टों से बचने के लिए गीता में कहा हुआ—'कर्मयोग' सर्वोत्तम मार्ग है। कर्तव्य कर्म में अपनी प्रसन्नता का केन्द्र निर्धारित कर लेना यही कर्मयोग है। मनुष्य के लिए सबसे अधिक गौरव की, खुसी की और सफलता की बात यह है कि वह अपने कर्तव्य कर्म को पूरी जिम्मेदारी, ईमानदारी और गम्भीरता के साथ पूरा करे। सफलता और असफलता मनुष्य के हाथ की बात नहीं है, समय, परिस्थिति, अवसर और वातावरण के ऊपर निर्धारित है। कभी कभी अरबी घोड़े ठोकर खा जाते हैं और कभी-कभी अन्धों के हाथ बटेर पड़ जाती है। ऐसी स्थिति में अनावश्यक हर्ष शोक से बचे रहने के लिये हमें सफलता असफलता पर अपनी प्रसन्नता अप्रसन्नता निर्भर न रखनी चाहिये वरन् कर्तव्य पालन की पूर्णता में ही सुख एवं सन्तोष अनुभव करना चाहिये।

अपने स्वभाव को उत्तम बनाकर हम सामाजिक कष्टों से बचे रह सकते हैं। जैसा व्यवहार अपने लिए चाहते हैं वैसा ही व्यवहार यदि दूसरों के साथ करें तो दूसरों का प्रेम, सहयोग और सम्मान पर्याप्त मात्रा में प्राप्त किया जा सकता है। उदारता, दया, क्षमा, मधुर भाषण, सेवा, सहायता, सचाई, ईमानदारी, वचन का पालन, सच्चरित्रता एवं विश्वस्तता जैसे गुणों को अपने अन्दर धारण करने वाला दूसरों का हृदय जीत लेते हैं। उसे दूसरों के आक्रमणों से बचे रहने का सुयोग मिलता है और आई हुई विपत्ति को हलका करने वाले मित्रों की कमी नहीं रहती।

दैवी विपत्तियां जिन्हें रोकने में मनुष्य प्रायः असमर्थ सिद्ध होता है ईश्वरीय इच्छा, पूर्व जन्मों के कर्मफल एवं अदृश्य कारणों के ऊपर निर्भर हैं। आकस्मिक दुर्घटनाऐं, जिनकी पहले से कोई आशा नहीं होती कभी-कभी घटित हो जाती हैं। ऐसे अवसर आने पर धैर्य और साहस को एकत्रित करके मानसिक क्लेश से बच सकते हैं। जब शिर के ऊपर चोट आही पड़ी तो रोने, धोने, घबराने, सिर धुनने और पुराने सुख को याद कर करके अपने अन्तःकरण को दुखी करने से कोई लाभ नहीं। इस प्रकार दुःख मग्न होने से शरीर और मन की स्वस्थता नष्ट होती है। बुद्धि ठीक ठिकाने न रहने से गलत कार्य होने लगते हैं और परिणाम स्वरूप नई-नई विपत्तियां आटूटती हैं।

जब तक विपत्ति न आवे तब तक उसे रोकने का पूरा पूरा प्रयत्न करना चाहिए, पर जब वह टूट ही पड़े तो घबराना और शोक करना व्यर्थ है। धैर्य और साहस को समेट कर उस बिगड़ी हुई परिस्थिति के बीच में से नया मार्ग खोजना चाहिए।

दुःख जीवन के साथ हैं। तो भी यह निश्चय है कि प्रयत्न करने पर हम उनकी भीषणता, भयंकरता और पीड़ा को कम कर सकते हैं।

——❀——

घास का सेवा धर्म।

(श्री मतीरत्नेशकुमारीजी नीरांजना, मैनपुरी)

हरी-हरी दूर्वाके कोमल चित्ताकर्षक प्रकृति निर्मित बिछावने पर मैं थक कर लेट गई। कुछ ही क्षणों में मैंने अवसाद और क्लान्ति के मिटने का तथा नवीन स्फूर्ति का शरीर में संचारित होने का अनुभव किया। मेरा हृदय कोमल भावों से भर उठा। मैंने कृतज्ञता पूर्वक नन्हीं दूर्वा से पूछा—हम सब तुमको मसलते, कुचलते नोंचते, काटते रहते हैं फिर भी, जब कभी भी हम तुम्हारे निकट आते हैं स्फूर्ति और ताजगी ही पाते हैं ऐसी दिव्य अनन्त क्षमा तुमने कहाँ से पाई है ? क्या मुझे भी बतलाने की कृपा करोगी ?

नन्ही हरित दूर्वा प्रसन्नता पूर्वक प्रेम मधुर स्वर में कहने लगी—'सेवा ही मेरा एक मात्र जीवनोद्देश्य है, मेरा परमधर्म है, तुम्हारे थके हुए पगों तथा श्रान्त शरीर को नव स्फूर्ति प्रदान करने के लिये मैं हर समय अपना कोमल हृदय पथ पर बिछाये रहती हूं किसी की भी सेवा का सुअवसर प्राप्त होवे इस आशा में उत्कण्ठा पूर्वक नयन पथिकों की ओर लगाये रहती हूं। उसी सेवा का सुअवसर तथा सौभाग्य देकर जब कोई मुझे कृतार्थ करता है तब मैं उससे भला रुष्ट क्यों होने लगी ? मैं तो इसके लिये उसका आभार मानती हूं। विश्व सेवा में किसी तरह भी ये क्षण भंगुर शरीर काम आसके इससे बढ़कर इसकी और सार्थकता ही क्या हो सकती है ? हां ! तब अवश्य ही सन्ताप होता है जब कोई व्यर्थ ही उखाड़ २ कर फेंक देता है अथवा अकारण ही नौंच मसल कर नष्ट कर डालता है। यह सोच कर कि किसीके भी काम न आसकी व्यर्थ ही जीवन नष्ट होगया पर विश्व-सेवा का व्रती हृदय में किसी के लिए भी सद्भावनाओं तथा शुभकामनाओं के अतिरिक्त और रख ही क्या सकता है ? अतः यही सोच लेती हूं कि उसने अज्ञान वश ही मेरा जीवन व्यर्थ किया है प्रभु उसे ऐसी सद्बुद्धि दें कि आगे वह किसी का भी जीवन इस प्रकार नष्ट न करे।'

मेरा मस्तक श्रद्धा से नत होगया आह ! मानव समाज अपनी श्रेष्ठता, सहृदयता तथा उच्च विचारों पर गर्व करता है काश, हम इस नन्ही दूर्वा की भी समता कर पाते ? प्रभु हमें मिथ्याभिमान से बचा कर नन्हीं दूर्वा के पदानुसरण की शक्ति दें। ——

साधना में धैर्य की आवश्यकता

(योगी अरविन्द)

साधना के समय साधक को पूर्ण साहस और धैर्य रखना चाहिये, सिद्धि लाभ करने में कितना ही समय क्यों न लगे साधक को आकुल नहीं होना चाहिये। साधक को असाधारण धैर्य धारण करना चाहिए। और यदि इस बीच में कोई अनर्थकारी घटना उपस्थित हो जाय तो भी साधक को घबरा कर साहस नहीं छोड़ देना चाहिये। सच्चिदानन्द परमेश्वर सर्व शक्तिमान हैं, चाहे वे कितने ही भीषण गड्ढे में हमें क्यों न फेंक दें, किसी न किसी दिन वहां से उबार कर वे हमें अपनी गोद में अवश्य ले लेंगे, यह ध्रुव जानिये।

साधक के लिये व्याकुलता और उत्तेजना त्याज्य हैं। पहले पहल स्वच्छन्द प्रवृत्ति इस प्रकार का आडम्बर खड़ा करती है कि साधक के मनमें उठने लगता है कि खूब आगे बढ़ गये हैं. पर अब अंत में विदित होता है कि लङ्गर पडी जहाज की भांति हम उसी जगह ज्यों के त्यों पड़े हैं और अंगुल मात्र भी आगे नहीं बढ सके हैं, उस समय भीषण परिताप उपस्थित होता है। जो साधक आत्म समर्पण का व्रत ग्रहण कर के भगवान के हाथों में अपने को समर्पित करके जितना निश्चिन्त तथा संतुष्ट हो सकेगा, उतनी ही शीघ्रताके साथ उसे सिद्धि प्राप्त हो सकेगी साधना अत्यन्त कठिन काम है,पर जो लोग आरम्भ में ही इसमें दृढ़ विश्वास करके इस पर निर्भर हो जाते हैं उनके लिये इससे सरल कोई और मार्ग नहीं है।

कार्य और अकार्य का निर्णय

(पं० दीनानाथजी भार्गव 'दिनेश')

गीता शास्त्र कहता है कि परिस्थितियों के अनुसार कार्य-अकार्य का निर्णय करना ही कर्मयोग है। लौकिक मर्य्यादा, नीति तथा धर्म में भी कर्म करने की कुशलता का नाम योग है—'योगः कर्मसु कौशलम्', परन्तु प्रेम, मैत्री, करुणा आदि भावों में जब स्वार्थ की प्रधानता हो जाती है, तब वे मोह में बदलकर मनुष्यको धर्म से गिरा देते हैं।

आततायियों द्वारा अन्याय और छल से छीनी गई स्वतन्त्रता प्राप्त करना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। अपना-अपना आन्तरिक या वाह्य दोनों ही प्रकार का स्वराज्य खोजाने पर, पराधीनता में धर्म का पालन हो ही नहीं सकता। धर्म का मार्ग ईश्वर का मार्ग है। इस मार्ग में जो भी बाधक हों, उनको हटा देना ही धर्म है।

अर्जुन के सामने यह आपद्धर्म उपस्थित हुआ था और यही मीरा के सामने धर्म क्षेत्र में। भगवान् ने जो धर्म मार्ग अर्जुन को दिखाया, वही तुलसीदासजी ने मीरा को दिखाया था। प्रहलाद और ध्रुव ने इसी मार्ग पर चलकर धर्म और मोक्ष लाभ किया। भरत, विभीषण, गोपिकाएँ सब ने धर्म विरुद्ध पारिवारिक बन्धन को तोड़ दिया।

युद्धभूमि में भगवान् ने इसी बात को कर्मयोग का उपदेश देकर सिद्ध किया। कौरवों की ओर उनके साथ रहने वाले अच्छे और बुरे सभी की सद्गति इसी में थी कि वे अपने अकार्यों का फल भोगते हुए संसार के सामने अधर्म का फल प्रकट करें और यह दिखावें कि अधर्म का पक्ष चाहे कितना ही प्रबल क्यों न हो, प्रलोभन देकर वह चाहे अतुल बल धारियों को अपनी ओर मिला लें, परन्तु भीष्म और द्रोण जैसे इच्छा मृत्यु महापुरुषों का भी अधर्म पक्ष ग्रहण कर लेने से अन्त होता है। विजय वहीं है, जहां धर्म है।

जीवन की बागडोर आपके हाथ में है।

(श्रीमती कमल सेठी, बी० ए० प्रिवयस)

भाग्य ने जहां छोड़ दिया, वहीं पड़ गये और कहने लगे कि हम क्या करें किस्मत साथ नहीं देती सभी हमारे खिलाफ हैं, प्रतिद्वन्दता पर तुले हैं। जमाना बड़ा बुरा आ गया है। यह मानव की अज्ञानता के द्योतक पुरुषार्थहीन विचार हैं, जिन्होंने अनेक जीवन बिगाड़े हैं।

साधारणतः लोग समझते हैं कि वर्तमान सुविधाएँ अथवा असुविधाएं पूर्वजन्म के कर्मों के अनुसार हैं, मनुष्य भाग्य के हाथ में कठपुतली है, खिलौना है, वह मिट्टी है जिसे समय असमय यों ही मसल डाला जा सकता है। यह भाव अज्ञान, मोह, एवं कायरता के प्रतीक हैं।

अपने अन्तःकरण में जीवन के बीज बोओ। साहस, पुरुषार्थ, सद्संकल्पों के पौधों को जल से सींच सींचकर फलित-पुष्पित करो। साथ ही अकर्मण्यता की घास फूंस को छांट २ कर उखाड़ फेंको। उमङ्ग, उल्लासकी वायु के हिलोरें उड़ाओ।

आप अपने जीवन के, भाग्य, परिस्थितियों अवसरों के स्वयं निर्माता हैं। स्वयं जीवन को उन्नत या अवनत कर सकते हैं। जब आप सुख सन्तोष के लिये प्रयत्नशील होते हैं, वैसी ही मानसिक धारा में निवास करते हैं तो सन्तोष और सुख आपके मुख मण्डल पर छलक उठता है, जब आप दुःखी क्लान्त रहते हैं तो जीवनवृक्ष मुर्झा जाता है और शक्ति का ह्रास हो जाता है।

शक्ति की, प्रेमकी, बल और पौरुष की बात सोचिये, संसार के श्रेष्ठ वीर पुरुषों की तरह स्वयं परिस्थितियों का निर्माण कीजिए। अपनी दरिद्रता, न्यूनता, कमजोरी को दूर करने की सामर्थ आप में है। बस केवल आन्तरिक शक्ति प्रदीप्त कीजिये।

क्या संसार मिथ्या है ।

(पं० लक्ष्मीनारायणजी 'लक्ष्मन' मैनपुरी)

—— ※ ——

हर एक तथ्य से दो प्रकार ग्रहण किया जा सकता है। एक अर्थ रूप में दूसरे अनर्थ रूप में। सम दृष्टि रखना–अर्थात् सब में परमात्मा का अंश देखना, आत्मतुल्य समझना और यथोचित व्यवहार करना यह अर्थ हुआ। समदृष्टि रखने के सिद्धान्त को सुनकर माता के समान शूकरी का स्तन पान करना, पिता के समान गधे के चरण दावना और आचार्य के समान ऊँट का अभिवन्दन करना यह अनर्थ है। जो लोग अकल के पीछे लाठी लेकर चलते हैं वे ऐसे ही अर्थ से अनर्थ किया करते हैं।

मेरा स्वभाव सज्जनों से मैत्री पूर्ण व्यवहार करने का है। सत्पुरुषों की सेवा शुश्रूषा करने और उनसे घनिष्टता बढ़ाने में मुझे आनन्द मिलता है। मेरे इस स्वभाव की आलोचना करते हुए एक "विरक्त" बोले—भाई, संसार मिथ्या है, यहां कोई किसी का मित्र नहीं, किसी से मोह बढाने से क्या लाभ ?" उनके उस उपदेश में मुझे वैराग्य के महान् सिद्धान्त का अनर्थ ही प्रयुक्त होता दिखाई दिया।

संसार मिथ्या है। इस तथ्य का अर्थ यह है कि वस्तुओं का स्वभाव परिवर्तनशील है। जो चीज आज जैसी है कुछ ही समय बाद वह वैसी न रहेगी, समय पाकर उसका रूपान्तर हो जायगा या वह नष्ट होजायगी। इसलिये किसी वस्तु को अपनी सम्पत्ति न मानना चाहिए, अपने को स्वामी न बनाकर सेवक रहना चाहिए। इस सीधे साधे तथ्य का अनर्थ यह किया जाता है कि संसार की चीजें झूठी हैं, उनसे कुछ प्रयोजन न रखना चाहिए, जरा विचार करें कि यह अनर्थ कितना अज्ञान मूलक है।

यदि संसार मिथ्या है तो मिथ्या संसार की सभी मिथ्या चीजों से दूर रहना चाहिए। भोजन, पानी, हवा, वस्त्र, मकान, पात्र, पैसा, सभी मिथ्या हैं, इनको प्रयोग करने से क्या लाभ ? पुस्तकें, माला, देव प्रतिमा यह भी साँसारिक मिथ्या वस्तुओं से ही बने हैं। शरीर भी मिथ्या है, इसके द्वारा होने वाला पाप पुण्य भी मिथ्या है। उपदेश, कथा, कीर्तन, यज्ञ, जप, तप यह भी मिथ्या संसार से ही सम्बन्ध है। इन सब बातों को त्याग करके 'सत्य' मय जीवन जीकर कोई व्यक्ति बतावे, तो उसका उपदेश ठीक माना जा सकता है। परन्तु यह सर्वथा असम्भव है। ऐसे उपदेशों को अनर्थ ही समझना चाहिये।

गीता में भगवान् ने अर्जुन को अपना विराट रूप दिखाते हुए बताया है कि इस विश्व में जो कुछ है सो मैं हूं। परमात्मा विश्व के कण कण में समाया हुआ है। सन्त पुरुष दिव्य दर्शन की मस्ती में मस्त होकर कहते हैं—'जिधर देखता हूं उधर तू ही तू है।' अध्यात्म का अर्थ समझने वालों को यह संसार परमात्मा का विराट् स्वरूप दिखाई देता है, वे लोक सेवा में जीवन अर्पण करके साकार परमात्मा की सच्ची पूजा करते हैं। किन्तु जो अध्यात्म का अनर्थ करने पर उतारू हैं–उनके लिए सब कुछ मिथ्या है। चूंकि उनकी दृष्टि मिथ्या है—नेत्रों में मिथ्यात्व का रोग हो जाने से सारा संसार मिथ्या ही मिथ्या दृष्टिगोचर होता है।

भजन शब्द-भज्–सेवायां-धातु से बनता है। भजन का अर्थ है–सेवा। परमात्माकी पुनीति कृति-इस परम पावन विश्व में, पतित पावन परमात्मा की झांकी करता हुआ सच्चा भक्त गद्गद् होजाता है, भक्त के हृदय में अपार भक्ति होती है। भक्ति प्रेम को ही तो कहते हैं। परमात्मा की भक्ति-उसकी साकार मूर्ति इस विश्व की सेवा में है। प्रभु की चलती फिरती प्रतिमाओं की सेवा के लिए जिसका हृदय नहीं उमडता, प्राणियों के सुख की वृद्धि और पीड़ा निवारण में भाग लेने के लिए जिसकी अभिरुचि नहीं उमड़ती, वह भक्त नहीं हो सकता।

प्रेम में ही परमेश्वर है इसलिए हमें परमेश्वर से प्रेम करने के लिये उसकी चलती फिरती प्रतिमाओं से प्रेम करना चाहिये। — ※ —

स्वार्थ बनाम परमार्थ

जो लोग स्वार्थ साधन को ही जीवन का उद्देश मानते हैं उन लोगों से समाज का कोई उपकार होना सम्भव नहीं। स्वार्थी लोग सर्वदा यही सोचते हैं कि किसी तरह अपना मतलब निकलना चाहिये।

अपने मतलब की बात सिद्ध हुई तो सब हुआ। संसार भले ही ग़ारत हो 'उससे मेरा क्या हानि क्या लाभ। मैं किस तरह सुखी होऊँगा। मैं कैसे धनी होऊँगा। समाज में मेरा सम्मान कैसे बढेगा। जो दिन रात अपने मन में यों ही चिन्ता करता रहता है और उसके साधन में जी जान से लगा रहता है उस अन्धे को यह नहीं सूझता कि स्वार्थ त्याग से ही स्वार्थ सिद्धि प्राप्त होती है। वे स्वार्थान्ध यह भी नहीं समझते कि हम दूसरे से जैसे अपने उपकार की आशा रखते हैं। वैसे ही अन्य व्यक्ति भी हमसे उपकृत होने की आशा रखते हैं।

तुम जिस तरह सुख धन और सम्मान चाहते हो। उसी तरह और लोग भी चाहते हैं अपनी किसी चीज के बिगड़ने पर जैसे तुम दुखी होते हो वैसे अन्य लोग भी दुखी होते हैं। जैसे तुम अपने आराम, अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान की बात सोचते हो वैसे ही सब सोचते हैं।

जब तुम दूसरे की जरा सी भी टेढी भोंहें, एक बढ़ी चढी बात और परिहास नहीं सकते तब तुम्हीं सोचो, इन बातों को दूसरा व्यक्ति क्यों कर सह सकता है। तब तुम कठोर कण्ठस्वर से बड़ी उद्दण्डता के साथ परिहास करके उसके हृदय में क्यों कष्ट पहुँचाते हो ? जिन बातों को तुम अपने लिये पसन्द न करो तुम दूसरे के लिये भी वैसे ही समझो।

तुम अपने अन्तःकरण को सुखी करने के लिये दूसरे का जी कभी न दुखाओ। जो लोग अपने सुख के लिये दूसरे का जी दुखाते हैं वे स्वार्थी बनकर अपने मनुष्य जीवन को कलङ्कित करते हैं। ——

प्रेस फण्ड के लिये सहायताऐं

'अखण्ड ज्योति' का प्रेस लगाने के लिए इस मास निम्न सहायताऐं प्राप्त हुई। आशा है कि अन्य पाठक भी इनका अनुकरण करेंगे।

२०) श्री सांवलप्रसाद जी महरोत्रा जौनपुर
११) ,, बेनी माधवप्रसाद जी नगुचिया
११) ,, भवानीराम बलभद्रलाल द्रुग
११) ,, भीलचन्द जी वकील धरमपुरी
१०) ,, लक्ष्मनप्रसादजी विजय वर्गीय, महन्द्रगढ़
१०) ,, सुधाराम जी महाजन विलासपुर
८) ,, अगरचन्द नाहरा बीकानेर
८) ,, मगनलाल जी माथुर आबूरोड
७) ,, तोताराम जी पारगीर खंडवा
५) ,, सुखवासीलाल जी भरथना
५) श्रीमती चन्द्रकान्ता जेरथ दिल्ली
५) श्री पृथ्वीराज सिंह जी रामनगर
३) ,, देवीदीन जी रीडर, झांसी
२॥) डाक्टर गणेश प्रसाद जी मंझनपुर
२) श्री भारती बाबा जी सोमेश्वर
२) ,, ठाकुरदास जी नौतनवा बाजार
२) श्रीमती शान्तिदेवी दीक्षित कानपुर
२) श्री बलदेवदास जी पालनपुर
२) ,, ए० आर० थानेकर कोमारकन
२) ,, केशव कुमार शर्मा, मुरार
२) ,, देशराज जी ऋषि रुड़की
२) ,, शकुन्तला कुमारी, नुनहड़
२) ,, शूकरराम जी ईशरी बाजार
२) ,, त्र्यम्बक दिनकर पांण्डरीक उरई
२) ,, मदनलाल वर्मा अलमोड़ा
१॥=) ,, हीरालाल जी गुप्त कन्या
१।) ,, पूरनचन्द जी हटा
१।) ,, कन्हैयालाल राधेलाल इन्दौर
१) ,, ईश्वरी प्रसाद जी पालीवाल खड़नी
१) ,, फूलचंद जी चौरासिया हृदयनगर
१) ,, आत्माराम एन० जौहरी खिवान्दी
१) मास्टर श्रीराम जी कुलश्रेष्ठ सिरोही
१) ,, दुर्गासहाय जी सिरोही
१) श्री दुर्गाप्रसाद जी अनूपशहर

क्यों यह दुनिया नरक बनायें।

(लेखकः—श्री स्वामी सत्यभक्त जी वर्धा)

क्यों यह दुनिया नरक बनायें।
कण कण में आनन्द भरा है लूटें और लुटायें ॥
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥ १ ॥

वर्षा मीठा नीर पिलाती।
धरती मैया अन्न खिलाती।
मैया जो कुछ देती हिलमिल बांट बांटकर खायें।
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥ २ ॥

परम मित्र ये वृक्ष हमारे।
तनमन के अनमोल सहारे।
फूल खिलाते फल भी लाते देख देख मुसकायें।
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥ ३ ॥

आसमान सुन्दर महफिल है।
तारों की झिलमिल झिलमिल है।
बरस रहा आनन्द स्वर्ग से आनन्दी बन जायें।
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥ ४ ॥

जग तो है आनन्द-कन्दमय।
मनही करता दुःख-द्वन्दमय।
मनको अगर जीतलें हम तो स्वर्ग यहीं ले आयें।
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥ ५ ॥

झूठा सब मद मोह छोडकर।
मानवता से प्रेम जोड़कर।
जगको एक कुटुम्ब समझकर हिलमिल हँमे हँसायें।
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥ ६ ॥

सब कुछ मेरा सब कुछ तेरा।
दो दिन का आनन्द बसेरा।
बांट बांटकर खायें मिलकर जो मुट्ठी में पायें।
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥७॥

एक कुटुम्बी हो जग सारा।
शासक शासित रहे न न्यारा।
रहें न शोषक शोषित जग में श्रम की रोटी खायें।
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥८॥

सब से मीठी बोली बोलें।
कपट छोड़ अपना दिल खोलें।
प्रेम दिखायें विनय दिखायें वत्सलता दिखलायें।
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥९॥

कोटि कोटि वे बन्धु मिले हैं।
तन मन में मनसुमन खिले हैं।
सब सुमनों की माला गूथें सब पहिनें पहिनायें।
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥१०॥

स्वर्ग मोक्ष की छोड़ें आशा।
इस जग में क्यों रहे निराशा।
स्वर्ग बहिश्त यहीं हम पायें मन में मुक्ति मनायें
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥११॥

सत्य लोक हो यहीं हमारा।
बरसे प्रेमामृत की धारा ॥
सत्येश्वर मन्दिर की झांकी मनमन में दिखलायें।
क्यों यह दुनिया नरक बनायें ॥ १२ ॥